निःसहाय हिंदू

[वियोगांत उपन्यास]

लेखक

श्रीराधाकृष्णदास

संपादक

श्यामसुंदरदास

मिलने का पता—
गंगा-ग्रंथागार
३६, लाटूश रोड
लखनऊ

द्वितीयावृत्ति

सजिल्द [illegible]]   सं० १९९७ वि०   [सादी ।।)

प्रकाशक
श्रीदुलारेलाल
अध्यक्ष गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय
लखनऊ

मुद्रक
श्रीदुलारेलाल
अध्यक्ष गंगा-फ़ाइनआर्ट-प्रेस
लखनऊ

यह

क्षुद्र ग्रंथ

परम पूज्यपाद श्रीयुत भारतेंदु श्रीबाबू

हरिश्चंद्रजी के

चरण-कमलों में

उनके वात्सल्य-भाजन बंधु, शिष्य

और दासानुदास द्वारा

नम्रता-पूर्वक समर्पित हुआ।

निवेदन

पाठक महाशयगण !

आज मैं इस क्षुद्र उपन्यास को लेकर आप लोगों की सेवा में उपस्थित हुआ हूँ। कृपा-पूर्वक इस दीन को अपना दास जानकर इस लेख को अंगीकार कीजिए।

मेरी अवस्था अभी केवल सोलह वर्ष की है, और इस अवस्था के लोग बालक कहे जाते हैं, इसीलिये यह लेख भी बालक है, और इसी से इसमें बहुत-सी भूलें हैं। इससे मैं निवेदन करता हूँ कि इस बालक की धृष्टता को आप लोग क्षमा करेंगे, और बालकों की भूल-चूक सुधारना, तो बड़ों का स्वाभाविक धर्म है, इसलिये मैं विशेष नहीं कहता।

यह नियम है कि बालक जैसे-जैसे बड़ा होता है, वैसे-ही-वैसे उसकी बुद्धि बढ़ती जाती है, इसी नियम के भरोसे मैं परिश्रम करता जाता हूँ। देखना चाहिए कि यह नियम आप लोगों और ईश्वर की कृपा से कहाँ तक पूरा होता है। इस अवसर पर पूज्यपाद श्रीयुत भारतभूषण भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्रजी को कोटिशः धन्यवाद देता हूँ, और आप लोगों को सूचित करता हूँ कि इन्हीं की कृपा से मैं आप लोगों के सामने आया, और आने की भी आशा रखता हूँ। यद्यपि मैंने इस क्षुद्र पुस्तक को उक्त महाशय के समर्पण किया है, पर उनकी कृपा इतनी है कि यदि मैं जन्म-भर उन्हीं का गुण गाया करूँ, तो भी उनकी कृपा का तृण-मात्र भी बदला न हो। मैं केवल धन्यवाद के साथ इस ग्रंथ को उन्हीं पर न्योछावर करता हूँ। तथापि आशा है कि सदा कृपा बनी ही रहेगी।

निवेदक

राधाकृष्णदास

निवेदन

यह ग्रंथ पूज्यपाद स्वर्गीय भाई साहब बाबू हरिश्चंद्रजी के आज्ञानुसार बना था, किंतु कई कारणों से बिना छपे ही इतने दिनों तक पड़ा रहा। जिनकी आज्ञा से यह बना था, जिनके श्रीचरणों में समर्पित करके फूले अंगों नहीं समाने की इच्छा होती थी, हाय! आज वही नहीं हैं! सब उत्साह भंग हो गया, परंतु जो कोई जीता रहता है, उसको सभी कुछ करना पड़ता है। अतएव आज यह ग्रंथ आप लोगों की सेवा में उपस्थित किया जाता है। यदि आप लोगों की कृपादृष्टि इस पर होगी, तो मैं अपना परिश्रम सफल समझूंगा।

यह ग्रंथ जैसा लिखा गया था, अक्षर-अक्षर वैसा ही छपा है। इसमें जो कुछ त्रुटि हो, क्षमा की जाय।

१ फ़रवरी, १८९० ई० }

दासानुदास

राधाकृष्णदास

सम्मति

मेरे परमप्रिय मित्रवर बाबू राधाकृष्णदासजी ने 'निःसहाय हिंदू'-नामक एक नवीन उपन्यास लिखा है। उन्होंने स्नेह-वश मुझे उस उपन्यास को आद्योपांत देखने के लिये दिया। मैंने भी उनके इच्छानुसार उसे अवलोकन किया, तो अति प्रसन्न हुआ। कारण, अभी उक्त मित्र अल्पवय हैं, और उनका उत्साह देखता हूँ, तो बहुत बढ़ा हुआ है। यह उपन्यास गोवध-निवारण के लिये तो उत्तम हुई है, परंतु इसमें बाबू राधाकृष्णदासजी ने कई स्थल में अपने वित्त बाहर रचना की है, और इसमें हम लोगों की अवस्था भली भाँति दिखलाई है। इस उपन्यास में उन्होंने यह बड़ा ही चमत्कार किया है कि एक मुसलमान को हिंदुओं का साथी बनाकर यवनों के मुख में चपेट लगाई है, और यथासाध्य यवनों ही को अपराधी सिद्ध किया है। अंत में यवनों ही को परम द्रोही बनाया है, और हिंदुओं को निर्दोष कर दिखाया। स्थानांतर में खुशामदी और पाखंडियों की खूब ही धूल उड़ाई है। यवनों के ऐक्य तथा हम लोगों के अनैक्य को भी बड़ी बुद्धिमानी से दिखलाया है। अंत में युद्ध के अनुकरण में स्त्रियों का धर्म भी अच्छी तरह निरूपण किया है। और अधिक कहने की कोई आवश्यकता नहीं, मैं जहाँ तक देखता हूँ, इन्होंने अपनी अवस्था के अनुसार बहुत अच्छा लिखा है।

मुझे विशेष आनंद इस बात का है कि बाबू राधाकृष्णदासजी यदि यों ही सोत्साह रहे, और परिश्रम करते गए, तो इनसे भी हिंदी-भाषा को न्यूनाधिक सहायता मिलनी संभव है। भगवान् इनको यह सुबुद्धि दे कि यह सदा सत्कर्म तथा हम लोगों के मान्यवर श्रीभारतेंदु बाबू हरिश्चंद्रजी की भक्ति-पूर्वक सेवा करते रहें, जिसमें इनका असंख्य लाभ संभव है।

मानमंदिर
२७।११।८१

व्यास रामशंकर शर्मा

प्रथम परिच्छेद

[मित्रों की बातचीत]

भरित नेह-नव-नीर नित बरसत सुरस अथोर ;
जयति अपूरब घन कोऊ, लखि नाचत मन-मोर ।

गरमी की ऋतु थी, सायंकाल का समय। सूर्य अस्ताचल चले गए थे। पहाड़-से मकान ज्वालामुखी हो रहे थे, अर्थात् उनके पत्थर ऐसे तप गए थे कि उनमें से लवरें निकलती थीं, और गरमी का अंत न था। उस समय मदनमोहन अपने मित्र माधव को साथ लेकर हवा खाने निकला। दोनो बाजार की सैर और आपस में कुछ बातें करते हुए चले जाते थे। मदनमोहन ने कहा—"मित्र! धन्य हैं ये बेचारे दूकानदार, जो गरमी में भी बैठे हुए अपना काम कर रहे हैं, और पसीने से सराबोर हैं। पंखा भी नहीं है, परंतु कुछ नहीं घबराते, मानो इनके लिये गरमी है ही नहीं। पसीना पोंछते भी नहीं। धन्य है ईश्वर को, जिसने संसार में सब तरह के मनुष्य बनाए, वास्तव में उसके सभी काम विचित्र हैं।"

माधव ने कहा—"हाँ, इसमें संदेह नहीं कि ईश्वर की सब बातें विचित्र हैं, परंतु गरमी-सरदी न मालूम होना, यह केवल अभ्यास ही है। इन्हें ऐसा ही नित्य करते-करते अभ्यास

हो गया है। अब इन्हें कुछ भी कष्ट नहीं होता। यदि तुम भी इसका अभ्यास करो, तो कुछ दिन तक अवश्य कष्ट मालूम होगा, परंतु फिर तुम्हें कुछ भी कष्ट न होगा।"

इसी तरह बातें करते हुए ये लोग बाग़ में पहुँचे, और वहाँ कुछ देर तक टहलते रहे। फिर तिपाई पर बैठकर बात करने लगे। मदनमोहन जाति का वैश्य था, और इसका पिता इसे एक ही बरस का छोड़कर मर गया था। इसका भाई भी अपने पिता के मरने के पीछे थोड़े ही दिन में मर गया। इसे मा ने पाला था। न तो यह धनाढ्य ही था न दरिद्र, २० बरस का, एक मध्यम अवस्था का मनुष्य था। इसकी शिक्षा बहुत अच्छी हुई थी, और यह भारतवर्ष का बड़ा ही शुभचिंतक था। माधव कैसा मनुष्य था, यह पाठकगण आप ही विचार लेंगे, क्योंकि वह सुशिक्षित मदनमोहन का परम प्रिय मित्र था।

मदनमोहन ने कहा—"मित्र! देखो, भारतवर्ष की कैसी दुर्दशा हो रही है, यहाँ के मनुष्य कैसे आलसी, कायर और मूर्ख हो गए हैं। ये दोनो मनुष्य, जो वृक्ष के नीचे बैठे थे, कैसी बातें कर रहे थे। एक ने कहा—'भाई, हमरे लड़का के बहुत लोग कहिन कि अँगरेजी पढ़ाओ, पर हम नाहीं पढ़ावा।' दूसरे ने पूछा—'काहे?' उसने उत्तर दिया—'का तू नाहीं जनत्यो, देखो, रामचंद अँगरेजी पढ़िन न, बेमजहब होय गए। ऐसा सुना है कि अँगरेज लोगन के साथ खाय लेथैं, और

याक पोथिउ बनाइन हैं, वहिमाँ लिखिन हैं कि अँगरेजन के साथ खाए मँ कुछ हरज नाहीं। ई किरिसतानी मता नाहीं, तो और का है?'"

दूसरे ने कहा—"न हम अँगरेजी पढ़ा, न हमरे पुरखा लोग अँगरेजी पढ़िन, फिर जो ऊ पढ़िहै, तो का ओके हमहू लोगन से जादे अकिल आय जैहे। ई सब बातन के सोच के हम ओके अँगरेजी-पारसी कुछ नाहीं पढ़ावा, खाली अपना इलम सिखाय दिया।"

दूसरे ने कहा—"हाँ, और का, रामजी रक्खे चार दिन में सियाने होय जैहैं, तो अपना सब काम-काज तो निकाल लेइहैं, नाहीं तो पाँच-छा बरस अँगरेजी पढ़ै, तबौ कोई काम का सहूर न आवै। अच्छा, चलो, अब साँझ भई, कोठी चले के है।"

हा! जहाँ के लोगों की ऐसी बुद्धि है, वहाँ की उन्नति कैसे होगी? ईश्वर आजकल न-मालूम क्यों हम लोगों पर रूठा है। आगे तो हम लोगों के पूर्व-पुरुषों पर बहुत ही प्रसन्न था, किंतु जब से हज़रत मुसलमानों के क़दम-शरीफ़ यहाँ आए, तभी से सब चौका लगा। सच है—"जहँ-जहँ चरन परे संतन के, तहँ-तहँ बंटाधार।" हमें आशा थी कि सरकारी राज्य में ये लोग अवश्य सुधर जायँगे, परंतु इनके राज्य में तो ये लोग और भी सत्यानास हो गए। मेरी समझ में इसका कारण यही मालूम होता है कि मुसल-

मान लोग इन्हें बहुत कष्ट देते थे, इसलिये ये सदा नए-नए उपाय अपने बचाव के सोचा करते थे, और अपना धन, धर्म इत्यादि बचाने के लिये उद्योग करते थे। लड़ते, मरते और अपनी रक्षा के लिये सभी कुछ करते थे, और इसी से ये लोग उद्योगी, साहसी और बुद्धिमान् होते थे। परंतु न अब इन्हें किसी बात का कष्ट है, न इनका कोई शत्रु है, जिसका डर हो। बस, फिर क्या पूछना है, चैन से कटने लगी। खाना-पीना और बेपरवाह पड़े रहना, व्यर्थ को अहंकार किया करना कि पूर्व-पुरुष ऐसे थे, वैसे थे, हमारी बराबरी कोई कर सकता है ? बस, इसी मद में चूर पड़े रहना, न किसी बात का उद्योग करना, न कुछ समझना-सोचना। इन पर यह मसल बहुत ठीक घटती है कि "हमारे बाप ने घी खाया, हमारा हाथ सूँघ लो!" अब इन लोगों को फिर से सुधारने में बड़ा भारी उद्योग करना पड़ेगा, तब कदाचित् कुछ हो, सो इसकी भी पूर्ण आशा नहीं, क्योंकि ये लोग चिकने घड़े की तरह हैं, पानी पड़ा और साफ़।

माधव ने आह भरकर कहा—"इसमें क्या संदेह है, इस देश की बहुत ही बुरी दशा है। इसके सुधरने की आशा बहुत ही थोड़ी है। आहा ! ईश्वर भी क्या ही विचित्र तमाशा किया करता है। यही भारतवर्ष, जो सब देशों में श्रेष्ठ था, अब सबसे बुरा हो रहा है। हम लोगों के पूर्व-पुरुषों ने जो-जो

बातें अच्छी निकाली थीं, वे ही सब अब बुरी हो रही हैं। निस्संदेह यहाँ के-से मूर्ख लोग कहीं न होंगे। इस देश के लोग बड़े ही कृतघ्न हैं। जो कोई इनका कुछ उपकार करता है, उसी को ये लोग बुरा बनाते हैं। 'जाके लिये चोरी करो, वही बनावे चोर!' कैसे किसी का जी बढ़े, जो इनके लिये कुछ उद्योग करे। हा! ईश्वर, तू ऐसा विमुख क्यों हो रहा है कि अपनी प्रजा की ऐसी दशा देखकर भी निश्चिंत बैठा है। मित्र! तुमने जगद्विख्यात कविवर श्रीयुत बाबू हरिश्चंद्रजी भारतेंदु की बनाई हुई 'भारतजननी' और 'भारत-दुर्दशा' देखी है या नहीं? उसमें कवि ने भारतवर्ष की अवस्था बहुत ही अच्छी तरह लिखी है।"

ये लोग इसी तरह बातें कर रहे थे कि मदनमोहन एका-एकी चौंक उठा, और बोला—"चुप-चुप, वह देखो, चाचाजी आते हैं। यदि वह सुन लेंगे, तो बड़े ही रुष्ट होंगे। वह प्रायः मुझसे कहा करते हैं कि तुम सब चौपट करोगे। हर वक़्त हाहा-ठीठी, गपशप किया करते हो, कहीं कोई किताब ले बैठते हो, कहीं अख़बार, काम-काज में तो जी नहीं लगता। इससे उनके आने के पहले ही यहाँ से चले चलना अच्छा होगा। अब रात भी हो गई है। चलो।"

ये दोनो वहाँ से उठे, और बहुत धीरे से उनकी आँख बचाकर निकल गए।

बाहर आकर मदनमोहन ने कहा—"मित्र! कल 'भारत-

हितैषिणी' सभा होगी। उसमें भारत की वर्तमान दशा पर वक्तृता देने के लिये सभा से मुझे आज्ञा हुई है। सो मैंने इस विषय में अपने शक्त्यनुसार कुछ लिखा है। वह कल सभा में पढ़ूँगा। तुम कल सभा में अवश्य आना।"

माधव ने आना स्वीकार किया, और वे दोनो अपने-अपने घर गए।

द्वितीय परिच्छेद

[भावजी की कोठरी]

रात को १० बज गया था। प्रायः सब दूकानदारों ने दूकानें बंद कर दी थीं। गरमी के कारण सड़क पर बहुत कम मनुष्य दिखाई देते थे। मदनमोहन सोने जा चुका था। कोठी में केवल एक गुमाश्ता बैठा हुआ पंखा हाँक रहा था। उस समय मदनमोहन का चाचा सोहनलाल बाजार से होकर आया, और गुमाश्ते से कहता हुआ चला गया कि "बही लेके हमरी कोठरिया में आओ।" उसके चले जाने के पीछे गुमाश्ते ने कहा—"उन्हें हियाँ बैठत न-जाने का होथै कि जब देखो, तब हुएँ गरमी में जाय बैठथैं।" और बेचारा बही लेकर कुछ बुड़बुड़ाता हुआ चला। नौकरी बड़ी बुरी चीज़ है, पेट के लिये सभी कुछ करना पड़ता है। सोहनलाल की कोठरी का हाल सुनिए—अढ़ाई गज की लंबी, चौड़ी भी उतनी ही, और ऊँची

इतनी कि विना सिर नीचा किए जो भीतर जाय, उसे तुरंत यथोचित दंड मिले। एक बड़ा पुराना फटा टाट बिछा हुआ था, और एक दीया, जिसमें एक ही बत्ती थी, जल रहा था। सोहनलाल बैठे थे। गुमाश्ता भी बही लिए हुए जा बैठा। गरमी का तो क्या पूछना था। ऐसा ज्ञात होता था कि उसे संसार-भर में यही स्थान अच्छा लगा कि पूर्ण रूप से यहीं आ बिराजी। दुर्गंधि के मारे नाक फटी जाती थी। पसीने से शरीर और कपड़े की तो क्या बात है, टाट जो बिछा हुआ था, भीग गया। यदि यह नरक कहा जाय, तो अनुचित न होगा।

सोहनलाल ने कहा—"आज की बिध मिलावे के है", और दोनो मिलके बही देखने लगे। जब सब लिख गया, तब उसे जोड़ने लगा। सब हिसाब मिल गया, केवल एक पैसा घटा। उसके लिये घंटों तक सिर मारा। जब वह पैसा भी याद आ गया, तब पिंड छोड़ा।

सोहनलाल ने कहा—"मानिकचंद खुशालराम का लेखा तो देखो, अब उनका कितना बाकी है?"

गुमाश्ते ने बही उलट-पुलटकर देखी, और कुछ जोड़-जाड़कर कहा—"८८६ रुपए, साढ़े दस आने बाकी हैं।"

सोहनलाल ने कहा—"अच्छा, अब कल देखा जैहे।"

थोड़ी देर पीछे सोहनलाल ने कहा—"कहो, अब हम मदनमोहन का का करी, ओके कितनौ समझाओ, कुछ सुनबै

नाहीं करत। कितना कहा कि तू हमरे साथ बजार चला करो, अपना काम-काज सीखो, दुइ-तीन सौदा कराय दिया, आठ-दस आना मिल गवा। न कोई की नौकरी न चाकरी, पर मनतै नाहीं, हम करी सो का करी। हम तो ओके मारे तंग होय गए, हाहा-ठीठी, खेल-कूद में दिन बितावना। आएदिन कुमेटी लगी रही थी। हम तो जनबो नाहीं करते कि कुमेटी केके कहथैं। अबहिन तो नहीं मालूम होत, जब सिर पर पड़िहै, तब जनिहैं। माथे पर हाथ धरके रोइहैं, और तब कहिहैं कि कोई कुछ कहत रहा। हमैं का चूल्हे छोड़ भाड़ में पड़ैं। जैसा करिहैं, वैसा आपै पइहैं।"

गुमाश्ते ने कहा—"हम का बताई साहब, आप जो अच्छा समझो, सो करो। हमें का हुकुम होथै? अब हम जाई न?"

सोहनलाल ने कहा—"अच्छा, जाओ।"

गुमाश्ता 'जाओ' यह शब्द सुनकर ऐसा प्रसन्न हुआ, जैसे बड़ा धन मिल गया हो, और ऐसा प्रसन्न होकर चला, जैसे कोई बंदीगृह से छूटा हो।

गुमाश्ते के जाने पर सोहनलाल ने कहा—"चली, अब हमहू सूती। सबेरेई गंगाजी नहाए जाए के है।" और उठकर, दिया बुझाकर, किवाड़ बंद करता हुआ ऊपर चला गया। लेखनी ने भी उस नरक से छुट्टी पाई।

तृतीय परिच्छेद

[भारत-हितैषिणी सभा]

पाँच बज गया था। 'भारत-हितैषिणी सभा' के प्रायः सब सभासद आ चुके थे। मदनमोहन वक्ता (लेक्चरर) था, इसलिये वह सभापति की आज्ञा से उठा, और अपने लिखे हुए व्याख्यान को उसने पढ़ना आरंभ किया।

(व्याख्यान)

सभ्य महोदयगण !

आज आप लोगों ने मुझे कृपा करके 'भारतवर्ष की वर्तमान दशा' पर कुछ कहने के लिये आज्ञा दी है। इसलिये मैं आप लोगों को धन्यवाद देकर और आप लोगों के अमूल्य समय को अपने निस्सत्ववाद से नष्ट करने की क्षमा माँगकर आज्ञा का प्रतिपालन करता हूँ। आप लोगों को यह भली भाँति ज्ञात होगा कि काल-चक्र किसी को भी एक अवस्था में नहीं रहने देता। जो धनाढ्य थे, वे भिखारी हैं; जो भिखारी थे, वे धनाढ्य हैं; जो राजा थे, वे प्रजा; जो प्रजा थे, वे राजा; जो खड़ा है, वह बैठेगा; जो बैठा है, वह खड़ा होगा; जो चढ़ा है, वह उतरेगा; जो उत्पन्न हुआ है, वह मरेगा; जिसकी उन्नति है, उसकी अवनति होगी; जिसकी अवनति है, उसकी उन्नति होगी; जो सुखी है, वह दुखी होगा; जो दुखी है, वह सुखी होगा। इसी

तरह संसार की जितनी वस्तुएँ हैं, सभी ऐसी हैं। यदि सबका वर्णन किया जाय, तो एक बड़ी भारी पुस्तक हो जाय। देखिए, सूर्यनारायण जो संसार के जीवनाधार हैं, और जिनके बराबर संसार में कोई नहीं है, वह भी घटते और बढ़ते रहते हैं, अर्थात् सबेरे से दोपहर तक बढ़ते हैं, और फिर धीरे-धीरे घट जाते हैं, यहाँ तक कि मालूम नहीं होता कि सूर्य भी कोई वस्तु है। इसी तरह संसार में जितने देश हैं, जो कि इस समय पूर्ण सभ्यता की अवस्था में हैं, किसी समय असभ्य थे। कदाचित् इन्हीं उन्नति और अवनति के समयों को पुराण में सतयुग, द्वापर, त्रेता और कलियुग लिखा है। इस काल-चक्र के फेर-फार में यह भारतवर्ष, जो किसी समय पूर्णोन्नति की अवस्था में था, अब पूर्ण अवनति की अवस्था में है। हा! इस भारतवर्ष की अब क्या दशा हो गई है। हे भारत-भूमि! क्या तू अब वह भूमि नहीं है? हे भारतवासी! क्या तुम उन आर्यों के वंश में नहीं रह गए? हे देवतागण! क्या अब आप लोग देवता नहीं हैं? हे कृपानिधान ईश्वर! क्या अब तू कृपानिधान नहीं है? हे दयासिंधु! क्या अब तू सचमुच निर्दय हो गया? क्या तुझमें अब दया का लेश-मात्र भी नहीं रहा? भारतवर्ष की कैसी दुरवस्था है? हा! यह भारतवर्ष सारे संसार में श्रेष्ठ था। अब सभी इससे घृणा करते हैं। अब वे प्राचीन महात्मा लोग, जिनसे भारतवर्ष की उन्नति थी, कहाँ चल दिए? हे भगवान्, श्रीरामचंद्रजी

और श्रीकृष्णचंद्रजी अब आप लोग कहाँ हैं ? अब भारत-वर्ष को क्यों भूल गए ? हे महाराजा हरिश्चंद्र, युधिष्ठिर, भीम, करण, दधीचि, परशुराम, विश्वामित्र, खुमानराय, शिवाजी, मानसिंह इत्यादि शूर-वीर भारतवर्ष से, जो आप लोगों का बड़ा ही प्रिय था, क्यों इतने दुखी हो गए ? हे परम पूजनीय ब्राह्मण महाशय ! अपने पूर्वजों को स्मरण करो, और दीन भारतवासियों को सदुपदेश से इस अज्ञान-रूपी महासागर से निकालो।

हे क्षत्री लोग ! अब तो चेतो। जो तुम्हारे पूर्व-पुरुष स्वतंत्र राज्य करते थे, उन्हीं के वंश में तुम लोग भी हो। क्या इतने पर भी लज्जा नहीं आती ? हे वैश्य महाशय ! सारा धन परदेशी लोग लिए जाते हैं, तिस पर भी तुम लोग अपने कार्य में तत्पर नहीं होते ? हा ! क्या यह वही भारतवर्ष है, जिसमें बड़े-बड़े महात्मा हुए हैं ? निस्संदेह अब भारतवासियों के रोने का समय आ गया।

रोवहु सब मिलिकै, आवहु भारत-भाई ;
हा-हा ! भारत-दुर्दशा न देखी जाई।
सबसे पहले जेहि ईश्वर धन-बल दीनो ;
सबके पहले जेहि सभ्य विधाता कीनो।
सबके पहले जो रूप - रंग - रस - भीनो ;
सबके पहले विद्या-फल जिन गहि लीनो।

868

अब सबके पीछे सोई परत लखाई ;
हा - हा ! भारत - दुर्दशा न देखी जाई।
जहँ भए शाक्य, हरिचंद रु नहुष, ययाती ;
जहँ भए युधिष्ठिर, व्यासदेव सर्याती।
जहँ भीम, करन, अरजुन की छटा देखाती ;
तहँ रही मूढ़ता, कलह, अविद्या राती।
अब जहँ देखहु तहँ दुःखहि दुःख लखाई ;
हा - हा ! भारत - दुर्दशा न देखी जाई।
लरि वैदिक, जैन डुबाई पुस्तक सारी ;
करि कलह बुलाई जवन-सैन पुनि भारी।
तिन नासी बुधि, बल, विद्या, धन बहु बारी ;
छाई अब आलस - कुमति - कलह - अँधियारी।
भए अंध पंगु सब दीन-हीन बिलखाई ;
हा - हा ! भारत - दुर्दशा न देखी जाई।
अँगरेज - राज सुख - साज सजे सब भारी ;
पै धन बिदेश चलि जात यहै अति ख्वारी।
ताहू पै महँगी काल रोग बिस्तारी ;
दिन-दिन दूनो दुख देत ईस हा हा री।
सबके ऊपर टिक्कस की आफ़त आई ;
हा - हा ! भारत - दुर्दशा न देखी जाई।

अब इस भारतवर्ष की जैसी दुर्दशा है, वह आप लोगों पर विदित ही हो गया, इसमें विशेष कहने की कुछ आवश्यकता

नहीं । अब मैं इन दुर्दशाओं का कारण, जो कुछ मेरी क्षुद्र बुद्धि में आया, लिखता हूँ । मेरी समझ में इन सब दुरवस्थाओं के कारण ब्राह्मण और मुसलमान लोग हैं। सबके पहले ब्राह्मणों ही ने सब चौपट किया, क्योंकि पहले जब भारतवर्ष स्वतंत्र था, और इसे किसी का भय न था, तब लोग निर्द्वंद्व हो अपना-अपना कार्य करते थे। ब्राह्मण लोग धर्मोपदेश और धर्म की रक्षा, राजा लोग प्रजा की रक्षा, वैश्य लोग धनोपार्जन, धन की रक्षा, और शूद्र लोग अन्न उत्पन्न करते थे। धर्म के विषय में जो ब्राह्मण लोग कहते थे, उसे साक्षात् ईश्वर का वाक्य मान लेते थे । यह मैं पहले ही सिद्ध कर चुका हूँ कि सब एक ही अवस्था में नहीं रहते । ब्राह्मणों के वंश में भी सभी अच्छे नहीं होते थे । जब ब्राह्मणों को तृष्णा विशेष हुई, तब उन्होंने वृथा का आडंबर फैलाना प्रारंभ किया, और लोग मानने लगे । अंत में ब्राह्मणों ने इस जाल को ऐसा फैलाया कि सभी बातों में धर्म आ घुसा (इससे मेरा यह अभिप्राय नहीं है कि धर्म कोई वस्तु नहीं, इसे न मानना चाहिए, वरंच इससे मेरा यह अभिप्राय है कि धर्म वहीं तक ठीक है, जहाँ तक हानि न हो, जब हानि हुई, तब वह धर्म क्या अधर्म है)। इस धर्म का पचड़ा इतना बढ़ गया कि बाप बेटा का छुआ न खाय, और बेटा बाप का। इसका फल बहुत ही बुरा हुआ, अर्थात् जब बाप बेटे ही में भेद पड़ गया, तब फिर और किसकी बात है।

इन्हीं ब्राह्मणों के कारण हजारों मत प्रचलित हो गए, और उनमें ऐसा विरोध फैला कि घर में चार आदमी हैं, तो चारो का जुदा-जुदा मत; नित्य इसी मत का पचड़ा घर में फैला हुआ है। स्त्री पति से इसी मत के लिये बुरा मानती है, और पति स्त्री से। इसका फल यह हुआ कि सत्य धर्म धीरे-धीरे लोप होने लगे; और असत्य की विशेषता हुई। फूट महारानी को तो बहुत ही अच्छा समय मिला, आ बिराजीं, और धीरे-धीरे अपना प्रभुत्व दिखाने लगीं। अब घर-घर कलह हो रही है। स्त्री पति का और पति स्त्री का मुख देखना नहीं चाहते। एका ने जब देखा कि यहाँ तो कुछ-का-कुछ हो गया, अब मेरा यहाँ निर्वाह नहीं, निकल भागा। बल का हाल सुनिए। महीने में पंद्रह दिन भूखे रहना पड़ा। आज यह व्रत है कल वह। बाल्यावस्था में विवाह होने लगा। वीर्य इस तरह नाश हुआ। अब बल बेचारा कहाँ ठहर सकता। इसने भी इस्तीफ़ा दिया। उद्योग ने कहा, जब मेरे पिता ही ने 'इस्तीफ़ा' दिया, तब हम यहाँ कैसे रह सकते हैं। वह भी लिपड़ी वर्तोना ले रफ़ूचक्कर हुआ। साहस भी उसी के साथ चल दिया। जब ये दोनो चले गए, तब आलस्य महाराज ने अपना डंका बजाया। फिर विद्या बेचारी कैसे रह सकती थी। उसने भी भागना चाहा। बुद्धि भी अपनी बड़ी बहन को जाते देख उसके साथ चल दी। तब फूट, आलस्य, अविद्या, अज्ञानता इत्यादि का राज्य जम गया। रोग महाराज ने भी इन लोगों की शरण ली। बस, बचा

क्या था, केवल धन। उसको नाश करने के लिये हज़रत मुसल-मानों का पौरा आया, जिसने अच्छी तरह चौका लगाया। मुसल-मानों के आने की व्यवस्था सुनिए। फूट की तो जड़ जमी ही थी। पृथ्वीराज और जयचंद से लड़ाई हुई। जयचंद ने अपनी सहायता के लिये मुसलमानों को बुलाया, और अंत में दो के दोनो को मार मुसलमान लोग आप ही राजा बन बैठे, और हिंदुओं पर अत्याचार करने लगे, और धन को ले-लेकर, उन्होंने विदेश भेजना प्रारंभ किया। हिंदुओं के हाथ में एकमात्र धन ही जो कुछ था, सो था। यह भी धीरे-धीरे खसकने लगा। हिंदुस्थान के इतिहास को देखिए। एक-एक मुसलमान लुटेरे बादशाह यहाँ से कितना-कितना धन ले गए। यहाँ तक कि हिंदुस्थान को बिलकुल खोखला कर दिया। धर्म में इन लोगों ने ऐसी बाधा डाली, जिसे सुनकर रोएँ खड़े हो जाते और जी काँपने लगता है। इन लोगों ने बड़े-बड़े मंदिर तोड़े, और मंदिरों की जगह मसजिदें बनवा दीं। महमूद ग़ज़नवी ने सोमनाथ महादेव का मंदिर तोड़ डाला, और महादेवजी की मूर्ति के चार टुकड़े कर एक को मक्का, दूसरे को मदीना भेज दिया, तीसरे को अपने सहन की सीढ़ी पर और चौथे को मसजिद की सीढ़ी पर लगा दिया। हा! ईश्वर ने कैसा मौन साधन कर लिया है। मुसलमानों ने जो-जो अत्याचार किए हैं, वे जब तक सूर्य और चंद्रमा पृथ्वी पर हैं, तब तक हिंदुओं को न भूलेंगे। ऐसा कौन हिंदू होगा, जो इन लोगों के अत्याचार को न जानता होगा, और उससे न दुखी होगा। मुसल-

मानों का तो धर्म ही क्रूर है, उनके मत का यह मुख्य वाक्य है कि 'काफ़िर को मारने से बिहिश्त मिलता है।' यदि उन्होंने ऐसा किया, तो कौन-सा आश्चर्य है, जब कि हिंदुओं के परम पूज्य, विश्वास-पात्र ब्राह्मणों ने स्वार्थपरायण होकर चौपट कर दिया। इस चौका लगाने और छुआछूत से कैसा कुछ चौका लग गया। इस वेदांत मत ने सबको ब्रह्म बनाकर कैसा चौपट किया है कि जिसका वर्णन नहीं हो सकता।

रचि बहु बिधि के वाक्य पुरानन माँहि घुसाए;
शैव, शाक्त, वैष्णव अनेक मत प्रकट चलाए।
जाति अनेकन करी, नीच अरु ऊँच बनायो;
खान-पान-संबंध सबन को बरजि छुड़ायो।
जन्म-पत्र-बिधि मिले ब्याह नहिं होन देत अब;
बालकपन में ब्याहि देह-बल नाश किए सब।
करि कुलीन के बहुत ब्याह बल-बीरज मारयो;
बिधवा-ब्याह-निषेध कियो, बिभिचार प्रचारयो।
रोकि बिलायत-गमन कूप-मंडूक बनायो;
औरन को संसर्ग छुड़ाइ प्रचार घटायो।
बहु देवी, देवता, भूत, प्रेतादि पुजाई;
ईश्वर सों सब बिमुख किए हिंदू घबराई।
अपरस सोल्हा छूत रचि भोजन-प्रीत छोड़ाय;
किए तीन-तेरह सबै चौका चौका लाय।

रचि कै मत वेदांत को सबको ब्रह्म बनाय ;
हिंदुन पुरुषोत्तम कियो तोरि हाथ अरु पाय ।

परंतु बड़े ही आश्चर्य की बात है कि जिन ब्राह्मणों के ५६ करोड़ देवता रक्षक थे, उनके रहते ही विदेशियों ने राज्य छीनकर धर्म में भी इतनी बाधा की कि सब मुँह देखते ही रह गए, कुछ भी बन न पड़ा। हा! इन्हीं सब कारणों से हिंदुओं की यह दशा हुई, और वे अब तक भी नहीं चेतते। इन लोगों ने तो यही सिद्धांत कर लिया है—

मिल जाय हिंद ख़ाक में, हम काहिलों को क्या ;
ऐ मीर, फ़र्श - रंज उठाना नहीं अच्छा ।

हिंदुओं की दुर्दशा उनके कर्म ही से है। जो इनके शत्रु हैं, उन्हें भी ये लोग मानते हैं। ग़ाज़ीमियाँ, जो इन लोगों का बड़ा भारी शत्रु था, और जिस दुष्ट ने सोमनाथ महादेव की मूर्ति तोड़ी, उसी को बहुत-से हिंदू लोग पूजते हैं! महमूद ग़ज़नवी ने तो दो करोड़ रुपए लेने पर मूर्ति न तोड़ना स्वीकार भी किया था, परंतु इसी दुष्ट ने रोक दिया। हा! हिंदुओं की बुद्धि न-जाने कैसी हो गई है, जिसका यह सब फल है।

इनसे अधिक भाग्य-हीन और कौन होगा कि अँगरेज़ों का राज्य पाकर भी न सुधरे? तब तो यह था कि मुसलमानों के भय से सदा सशंकित रहते थे, अब तो इन्हें किसी बात का भी भय नहीं है। न इनके राज्य में धर्म-विषयों में कोई बाधा

डाल सकता है, और न डाका ही पड़ने का कुछ भय है। अब तो चारो ओर से सुख-ही-सुख है, और उन्नति करने के लिये फाटक खुला है, परंतु इतने पर भी कुछ नहीं चेतते। यही तो खेद है! हा! ऐसा कौन-सा मूर्ख होगा कि थोड़े कष्ट से जो बहुत सुख हो, तो भी उस कष्ट को सहकर सुख के खज़ाने को न ढूँढ़े? सुधरेंगे कहाँ से, बुद्धि तो पहले ही से नष्ट हो गई है। उनसे यदि कुछ सीखा भी, तो वही कोट, बूट, पतलून, चुरुट, शराब, आराम, अभिमान इत्यादि दोषों के सिवा और कुछ नहीं। मैं देखता हूँ कि सुधरना क्या, वरन् अँगरेज़ों के राज्य में तो और भी बिगड़ गए। बचा-बचाया धन, उद्योग इत्यादि भी जाता रहा। व्यभिचार, कलह इत्यादि की वृद्धि हुई, और रहा-सहा सब सफ़ाचट हो गया। ऐसे अच्छे समय में उन्हीं लोगों की उन्नति होती है, जिनको कुछ बुद्धि होती है। यहाँ तो बुद्धि को पहले ही से तिलांजलि है—"यहाँ कहाँ सज्जन कर बासा।" फिर उन्नति कैसे हो सकती है, और भी अवनति होने लगी। कहिए क्या? तो इसका कारण यह है कि मुसलमानों के समय में सब तरह का भय रहता था, इससे लोग उद्योगी, बुद्धिमान् बने रहते थे। अब भय न रहने से आनंद से सोना प्रारंभ किया, और उद्योग को निर्मूल छोड़कर भाग्य ही पर धरना दे बैठे, जिसका परिणाम आप लोगों के सामने ही दिखाई देता है। जब सरकार ने देखा कि इन्हें अपनी कुछ भी चिंता नहीं है, तब

उसे क्या पड़ी थी, जो वह विशेष उद्योग करती। जितना राजा को चाहिए, उससे विशेष ही कर दिया, अर्थात् कॉलेज इत्यादि बनवा दिए कि जिससे विद्या सीखें। परंतु इससे कुछ विशेष लाभ न हुआ। लाभ हो कहाँ से, जब तक जी से नहीं लगती, तब तक कुछ नहीं होता। फिर सरकार क्या-क्या करे ? बलवे में बे-बात लड़कर सरकार को अपनी तरफ़ से ऐसा शंकित कर दिया कि चटपट सब शस्त्र छीन लेने की आज्ञा हो गई। अब अपने बचाव के लिये भी शस्त्र न रह गया। टैक्स लगाया गया कि जिससे सारी प्रजा दुःखित हो रही है। भला ऐसे मूर्खों ही को छोड़ दें, तो किससे लें ? बेचारे समाचार-पत्रों ने जो कुछ कहना प्रारंभ किया, प्रेस-ऐक्ट बन गया। बस, बोलो बचा क्या ? हा ! दुर्बल को सभी सताते हैं 'दुर्बलो दैवघातकः'। ऐसी न्याय-परायण गवर्नमेंट ने भी इन्हें तुच्छ समझा, तो रह क्या गई ? मुसलमानों ने जब देखा कि गवर्नमेंट भी इन्हें नहीं मानती, शस्त्र भी नहीं है, एका भी नहीं, तो गोवध इत्यादि महा उपद्रव करना आरंभ कर दिया। कई लोगों ने नालिश भी की, परंतु कौन सुनता है, रो बैठे। मुसलमानों ने दिन-दिन उपद्रव उठाना प्रारंभ कर दिया। परंतु इन लोगों को इतने पर भी न सूझा। हा ! ईश्वर का पूर्ण कोप इन्हीं लोगों पर है। इन विषयों पर यदि विशेष ध्यान दिया जाय, और अच्छी तरह लिखा जाय, तो एक बड़ी भारी पुस्तक हो जाय। अब इस विषय को यहीं पर समाप्त करके आशा रखता हूँ कि

यदि इतने में कहीं भूल-चूक हो, तो उससे मुझे सचेत कीजिए कि मैं फिर कभी ऐसी भूल न करूँ ।" मदनमोहन बैठ गया। (ताली बजी ।)

मदनमोहन के बैठने पर माधव उठा। माधव ने कहा—"बाबू मदनमोहन ने जो कुछ कहा है, उसकी प्रशंसा करने की कोई आवश्यकता नहीं, क्योंकि सब महाशयों पर विदित हो गया है। परंतु मैं इस सभा से निवेदन करता हूँ कि इसे केवल लंबी-चौड़ी बातों ही पर संतोष न करना चाहिए, बल्कि इसका उपाय भी सोचना चाहिए, और उद्योग भी करना चाहिए, क्योंकि इस सभा का नाम 'भारत-हितैषिणी' ठहरा, तो इसके काम भी इसके नाम के अनुसार होने चाहिए। (ताली बजती है।) आज बाबू मदनमोहन ने हम लोगों के लिये कष्ट करके बहुत ही अच्छा व्याख्यान दिया है, इसलिये मैं उन्हें धन्यवाद देता हूँ !" (ताली बजी ।) माधव बैठा।

एक सभासद् ने खड़े होकर कहा—"बाबू माधवप्रसाद ने जो कुछ कहा, वह बहुत ही ठीक है। हम लोग सच्चे जी से बाबू मदनमोहन को धन्यवाद देते हैं ! मेरी समझ में यदि भारतवर्ष की उन्नति के उपाय पर बाबू माधवप्रसाद ही आगत सभा में कुछ कहते, तो बहुत अच्छा होता।" (ताली बजी ।) सभासद् बैठ गया।

एक मुसलमान सभासद्—"बाबू मदनमोहन साहब ने जो कुछ फ़र्माया, दरहक़ीक़त सच है। इसमें कुछ शक नहीं कि

मुसलमानों ने बेचारे हिंदुओं पर बड़ा-बड़ा जुल्म किया है, जिसे मैं सरासर बेजा समझता हूँ, और आजकल भी कुछ फ़साद उठाया है। मैं सच्चे जी से हिंदुओं का शरीक हूँ, क्योंकि इस वक़्त सरासर हिंदुओं पर जुल्म हो रहा है। बावजूदे कि गोकुशी क़ुरान शरीफ़ में मना है, ताहम बहुत-से बदमाश मुसलमानों ने हिंदुओं का जी दुखाने के लिये इसे जारी रक्खा है। मैं क़सम खाकर कहता हूँ कि मैं इस बारे में आपके साथ हूँ।" (तालियाँ बजीं।) वह बैठा।

सभापति—"मैं इसे प्रकट करने में बहुत ही आनंदित होता हूँ कि मेरे मित्र मौलवी साहब ने उसके बिलकुल विरुद्ध कहा, जैसा कि हम लोगों ने सोचा था। निस्संदेह मुसलमानों की तरफ़ से यह बड़ा ही अन्याय कर्म हुआ है। जिसके कुछ भी बुद्धि होगी, वह कह सकेगा कि यह सरासर अन्याय है। मुझे बड़ा ही आश्चर्य है कि गवर्नमेंट ऐसी बातों पर क्यों नहीं ध्यान देती? गौओं का मारा जाना केवल धर्म-विरुद्ध ही नहीं, वरन् इससे कृषि-कर्म, आरोग्य आदि का भी बड़ा अपकार होता है, परंतु इतने पर भी गवर्नमेंट ध्यान नहीं देती। हमारे हिंदू भाइयों के लिये यह बड़ी ही लज्जा की बात है कि उन लोगों के सामने उनकी परम पूजनीया मा की यह दशा हो! धिक्कार है कि बहुत-से मुसलमान इस अन्याय से चिढ़ें, और हिंदुओं का इस पर कुछ भी ध्यान न हो। (ताली बजती है।) बहुत-से लोग इस विषय में कहते हैं कि 'भई,

क्या करें, सरकार तो कुछ करती ही नहीं, हम क्या करें। क्या हमारी जान मुफ्त की है कि बैठे-बैठाए खतरे में डाल दें? फ़र्ज़ करो कि मेहनत करने से गोहत्या कुछ कम हो, मगर उससे क्या फ़ायदा?' हा! उन मूर्खों को यह भी नहीं सूझता कि हमारी खेती-बारी का काम बैलों ही से होता है। यदि बैल न होंगे, तो कौन खेत में पानी देगा? और यदि गऊ न रहेगी, तो बैल कहाँ से आवेंगे? धर्म की बात को तो जाने दीजिए, इसी बात पर ध्यान दीजिए, तो देखिए, गऊ के न रहने से कैसा हानि होगी? अगली सभा में मैं अपने मित्र मौलवी साहब से निवेदन करूँगा कि आप ही इस विषय पर व्याख्यान दें। अब इस समय सभा विसर्जन की जाय।" (ताली बजी।) सभापति बैठते हैं।

सभापति को धन्यवाद देकर सब लोग उस मुसलमान की प्रशंसा करते हुए अपने-अपने घर गए। निस्संदेह उस मुसलमान ने पक्षपात-शून्य न्याय किया। क्या हिंदुओं को यह सब बात सुनकर भी लज्जा नहीं आती?

चतुर्थ परिच्छेद

[छटे गुंडे]

सूर्य रात्रि-पिशाची के डर से मुँह छिपाए भागा जाता था, चकवा-चकई प्रेमालाप कर रहे थे, क्योंकि

उनके आपत्ति का काल बहुत ही समीप था। कमल ने भी अपने प्राण-प्यारे (सूर्य) के वियोग में उदासी से मुख सिकुड़ा लिया था। झुंड-के-झुंड पक्षी वेग से अपने-अपने घोंसले की ओर आकाश-मार्ग में उड़ते हुए चले जाते थे। निदान संसार के सभी जीव रात्रि के भय से दुःखित थे; सिवा चोर, चमगीदड़ और व्यभिचारी स्त्री-पुरुष के। गलियों का वृत्तांत कुछ न पूछिए, जो रहते हैं, वे ही जानते हैं। हाँ, अँगरेजी प्रांत और गंगा-तट पर कुछ ठंडक थी। बेचारे शहर-वाले लोग अँगरेजी प्रांत में तो कहाँ जा सकते थे, पर प्रायः गंगा-तट ही जाते थे। इस समय गंगा-तट पर विचित्र समा दिखाई देता था, जिसका आनंद देखने ही से होता था। ठंडी हवा से हिलता हुआ जल सूर्य के लाल घाम में गले हुए सोने की धारा-सा बहता था। उस पर जो रंग-बिरंग के पक्षी बैठे थे, सुवर्ण-नदी में जवाहिर-से जड़े देख पड़ते थे। बहुत-से खत्री गंगापुत्र, जिन्हें सिवा बेफ़िक्री के और कुछ काम ही नहीं, डोंगियों पर चढ़, उस पार जाकर 'दिशा-फ़राग़त' और 'बूटी के रगड़े लगाने' के उद्योग में थे। प्रायः ब्राह्मण लोग इस समय नहाकर संध्या कर रहे थे, और कोई बैठे हुए शास्त्रार्थ करते थे। निदान यह कि इस समय विचित्र शोभा थी। कहीं डोंगियाँ जाती थीं, जिनमें से तरह-तरह की बोलियाँ आती थीं। कहीं लोग नहा रहे थे, कहीं तख्तों पर बैठे संध्या कर रहे थे, कहीं बुर्जों पर शास्त्रार्थ

हो रहे थे, कहीं लोग बैठे हुए बातें कर रहे थे, कहीं लोग जाते-आते थे। श्रीगंगाजी हिल रही थीं, जिससे लोगों का जी खिंचा जाता था। ऊँचे-ऊँचे मकान अपना ठाट-बाट अलग ही दिखा रहे थे। चटाइयाँ और छाते, जो घाम के बचाने के लिये घाटों पर लगे थे, इस समय लोगों को बुरे मालूम होते थे। ईश्वर की भी विचित्र लीला है, जिससे धूप में सुख मिलता था, उससे इस समय दुःख मिलता है। जिधर देखिए, उधर ही गुल खिला है। कुछ लड़के 'कबड्डी' खेल रहे हैं, कुछ आकाश ही को देख रहे हैं। जहाँ देखा कि कोई गुड्डी कटी, चट दौड़े। जो गुड्डी गंगाजी में गिरी, तो आप भी वहीं मौजूद। आहा! लड़कई का भी कैसा अच्छा समय है।

गरमी से दुखी दो मनुष्य बुद्धिराम और मूढ़चंद वहाँ आ पहुँचे। मूढ़चंद ने अपने सुंदर मुख को खोला और बोले—"कहो, तुम्हारा नाम क्या है?"

बुद्धिराम ने उत्तर दिया—"साहब, मुझको लोग बुद्धिराम कहते हैं।"

मूढ़चंद यह सुनकर बड़े ही कुड़बुड़ाए और अपने जी में कहने लगे कि देखो, यह बेवक़ूफ़ कहता है कि हमारा नाम बुद्धिराम है। क्या इसके हमसे भी विशेष बुद्धि है। मूढ़चंदजी कुछ पढ़े भी थे, पर 'पढ़े-लिखे बेवक़ूफ़' ऐसे ही लोग कहलाते हैं। अंत में बेचारे मूढ़चंदजी अपने छोटे

पेट में क्रोध को स्थान न दे सके। चट बोल उठे—"क्यों जी, तुम्हारा नाम किस बेवक़ूफ़ ने रक्खा है ?"

बुद्धिराम हँसकर चुप हो रहे। थोड़ी देर ठहरकर बुद्धिराम ने पूछा—"आपका क्या नाम है ?"

मूढ़चंद—"हमारा नाम पूछकर क्या करोगे ? हमारा नाम तो बहुत अच्छा है।"

बुद्धिराम—"जी, मैंने इसी तरह पूछा, कुछ आवश्यकता नहीं। परंतु मैं इतना ही चाहता हूँ कि आपके अच्छे नाम को सुनकर मैं भी कृतार्थ होऊँ।"

"हाँ, तब तो तुम ख़ुशी से सुन सकते हो।" मूढ़चंद ने बड़े अभिमान से कहा—"मेरा नाम मूढ़चंद है। भला, ऐसा नाम तुमने कभी सुना था ? बेशक मेरे मा-बाप बड़े ही अक़्लमंद थे।"

बुद्धिराम ने हँसकर कहा—"इसमें तो संदेह नहीं।" इतने में एक गुंडेजी भी महाबीरी (घी में फेटा हुआ सिंदूर) का टीका लगाए, बड़ी किनारी की नागपुरी धोती लँगोट की तरह कसे आ पहुँचे, और मूढ़चंद को देखकर बोले—"कहो संगी, तूँ हियाँ का करथौ ?"

मूढ़चंद—"यार, कुछ तो नाहीं।"

गुंडा—"ई के है ? ई तो कोई बड़ा मुग्गा (सीधा) देखाई देत है।"

बुद्धिराम—(जी में) हाँ, हम बड़े सीधे हैं। तुम जानते हो

कि यह इस बोली को नहीं समझता, परंतु मैं सब समझता हूँ। बोलने का काम नहीं। देखें, क्या-क्या बातें होती हैं।

मूढ़चंद—"अरे यार, कुछ न पूछो, ई तो बड़ा भारी चंडूल है।"

गुंडा—"तूँ एके कहाँ से फँसायो ?"

मूढ़चंद—"अरे, हियैं आय पड़ा।"

इतनी बातचीत करके गुंडेजी चले गए। मूढ़चंद ने बुद्धिराम से कहा—"अजी, यह तुम्हें पूछता था कि कौन है। मैंने तुम्हारी बड़ी तारीफ़ की है।"

बुद्धिराम ने अपने जी में कहा—हाँ, ठीक है, आपने बड़ी तारीफ़ की है। भला, इसमें भी कुछ कहना है। (प्रकट) "आपने बड़ी कृपा की।"

मूढ़चंद ने कहा—"अच्छा चलो, किसी तख़्ते पर बैठें।"

बुद्धिराम ने कहा—"अच्छा, चलिए।"

इतना कहकर दोनो सीढ़ी उतर तख़्ते पर जा बैठे। दोनो ने मुँह-हाथ धोया। मूढ़चंद ने कहा—"क्यों जी, कल तुम 'भारत-हितैषिणी' सभा में गए थे ?"

बुद्धिराम—"जी हाँ, गया तो था। आप भी गए थे ?"

मूढ़चंद—"हाँ, गए तो, मगर जी ख़ुश न हुआ।"

बुद्धिराम—"क्यों-क्यों ?"

मूढ़चंद—"अजी, कल सब नास्तिक-ही-नास्तिक इकट्ठे हुए थे।"

बुद्धिराम—"नास्तिक कैसे साहब ?"

मूढ़चंद—"जो तुमको यह नहीं सूझा, तो सुनो—सबके पहले नास्तिकराज मदनमोहन उठा, जिसने ईश्वरावतार ब्राह्मणों की शिकायत से खूब ही कान फोड़े। बाद अज़ाँ मुसलमानों में नास्तिक-शिरोमणि अब्दुलअज़ीज़ उठा।"

बुद्धिराम—(घबराकर) "हैं उन्होंने क्या किया ?"

मूढ़चंद—"तुम्हारा नाम बुद्धिराम सिर्फ़ नाम ही का है क्या ? कहते तो जाते हैं, इतना घबड़ा क्यों उठे ?"

बुद्धिराम—"अच्छा, कहिए।"

मूढ़चंद—"नास्तिक नहीं, तो और क्या है। अपने ही मज़हब की निंदा करता है। भला, हम पूछते हैं, इससे उसे क्या फ़ायदा हुआ ?"

बुद्धिराम—"वाह ! 'जिसके लिये चोरी करै, वही बनावै चोर !' जो उसने अपने भाइयों का पक्षपात छोड़कर न्याय की ओर ध्यान देकर आपकी तरफ़दारी की, उसी को आप नास्तिक कहते हैं। वाह ! वाह !! वाह !!!"

मूढ़चंद—"अजी, तुम्हारा नाम बुद्धिराम है, इससे तुम अपनी ही बुद्धि में चूर रहते हो। उसको अपना मज़हब छोड़कर हम लोगों की तरफ़दारी करने की क्या ज़रूरत थी ? उसका इंसाफ़ तो यही है कि 'काफ़िर' को सताना, सो इसके बर-ख़िलाफ़ चला। तब इंसाफ़ काहे को ठहरा, बल्कि ग़ैर-इंसाफ़ ठहरा।"

बुद्धिराम—"क्यों साहब, आप हिंदू हैं ? हमको तो दाल में

काला मालूम होता है। गंगाजी में बैठकर यह अन्याय की बात! हाय! हाय!! इसी से तो हिंदुस्थान की यह दशा है। देखना, यही मुसलमान स्वर्ग जायगा, और तुम्हारे-ऐसे हिंदू नरक में।"

मूढ़चंद—"अबे, चुप रह, बहुत बढ़कर न बोल।"

बुद्धिराम ने मन में कहा—अब यहाँ ठहरना ठीक नहीं। प्रकट में कहा—"तुम गाली-गुफ़्ता न बको। अब हम जाते हैं, तुमसे जो करते बने, सो कर लेना। हम फिर भी यही कहे जाते हैं कि तुम हिंदू कदापि नहीं हो।"

यह कहकर बुद्धिराम तो चल दिया, मगर मूढ़चंद खिसियाना-सा हो वहीं बैठा रह गया। थोड़ी देर पर बोला—"भला बचा, समझ लेंगे, अच्छे घर बयाना दिया है।" मूढ़चंद यही सब सोचता हुआ बैठा था कि उसका मित्र गुंडा भी आ पहुँचा। गुंडे ने कहा—"का सोचत हौ गुरू?"

मूढ़चंद ने उत्तर दिया—"आओ संगी, बैठ जाओ, सब कहीथै।"

गुंडेराम भी बैठ गए। तब मूढ़चंद बोला—"देखो गुरू, तोरे रहते ऊ सरवा, जेके हम देखावा रहा, हमें गाली दे गवा।"

गुंडे ने कहा—"भला संगी, कुछ हरज नाहीं, समझ लेबै। हमरे जिअत कोई आधी बात कहै, तो हम ओकी जीभ निकाल लेई।"

मूढ़चंद—"भाई साहब, हमैं तोरै तो भरोसा है। अब कुछ फिकिर

नाहीं। भला बचा, और बढ़ के बोले, अब कहाँ जात हौ।"

उस गुंडे से बात कर वह बहुत ही प्रसन्न हुआ, यहाँ तक कि फूला नहीं समाता था। रात अँधेरी थी, इससे वे दोनो वहाँ से उठे, और चल दिए।

हा! भारतवर्ष ऐसे ही लोगों से दुरवस्था में पड़ा है, जिनके कर्म तो ऐसे, और कहलावें हिंदू। धन्य है ईश्वर! ऐसे ही लोग सुखी रहते हैं।

अजब तेरी क़ुदरत, अजब तेरे खेल;
छछूँदर के सिर में चमेली का तेल!

पंचम परिच्छेद

[शत्रुता की जड़]

दोपहर का समय था। पूर्णयौवना धूप अपनी धूम मचाए थी। सूर्यनारायण अपने प्रबल प्रताप से सारे संसार को शासित कर रहे थे। लू चल रही थी। बेचारे ग़रीब लोग भी इस समय अपनी झोपड़ियों में सोए थे। अमीरों का तो क्या पूछना था, ख़सख़ानों में, जहाँ ख़स की टट्टियाँ लगी थीं, पंखा चल रहा था, जिससे ऐसी गरमी में भी माघ मास सूचित होता था, आनंद करते थे। चारो ओर सुनसान था। पक्षी भी अपने-अपने खोते में पड़े थे। गरमी का हाल तो पाठकों को विदित ही हो गया होगा, परंतु यहाँ की गलियों में

इस समय गरमी का असर न हुआ था, क्योंकि धूप की गुज़र ही वहाँ न थी। इस समय अमीरों के यहाँ उनके ख़ुशामदी लोग इकट्ठा रहते हैं, क्योंकि ठंडी जगह मिले, बरफ़ का पानी मिले, पान मिले, फिर लोग ऐसी जगह क्यों न जायँ ? ख़रबूज़े के दिन थे, इससे ऐसा कोई भी मुसलमान न था, जिसके घर में दस-बीस ख़रबूज़े हर समय न रहते हों, क्योंकि मुसलमान लोग ख़रबूज़े बहुत खाते हैं। दीवानी कचहरी सबेरे की थी, इससे दीवानीवालों को आनंद ही था, परंतु फ़ौजदारीवाले रोते थे, क्योंकि कचहरी दस से चार बजे तक होती थी। हाजी अताउल्लाह अपने ख़सख़ाने में बैठे हुए ख़रबूज़े खा रहे थे, और अपने हाज़िरबाशों से बातें कर रहे थे। हाजी साहब ने कहा—"क्योंजी शफ़ाउल्लाह, तुमने अब्दुलअज़ीज़ का हाल सुना, या नहीं ?"

शफ़ाउल्लाह बोला—"जी नहीं, फ़रमाइए तो, क्या हुआ ?"

अताउल्लाह—(ख़रबूज़ा खाते-खाते) "अजी, कुछ न पूछो। वह कमबख़्त दीन इस्लाम के काम का नहीं, वह तो ख़ासा काफ़िर हो गया। जहाँ कोई सभा होती है, हज़रत उसमें तशरीफ़ ले जाते हैं, और मुसलमानों के बरख़िलाफ़ ख़ूब कूद-कूदकर बोलते हैं।"

इतना सुनते ही जितने मुसलमान वहाँ बैठे थे, एक साथ 'तोबा-तोबा' कह उठे। शफ़ाउल्लाह ने पूछा—"हाँ हुज़ूर, मुसलमानों के बरख़िलाफ़ क्या कहा ?"

अताउल्लाह—"अजी, कुछ न पूछो। अब की साल बकरीद में जो गावकुशी हुई है, उसके बरखिलाफ़ किसी हिंदू ने कहा, तो आपने भी उसके खिलाफ़ कहना शुरू कर दिया, और सुनो, हज़रत ने क़सम खाई है कि हम हिंदुओं के साथ हैं। कमबख़्त, नालायक़। मज़ा तो यह कि जिन हिंदुओं के लिये उसने यह सब किया, वे तो कुछ बात भी नहीं पूछते। बचाजी हिंदू भी तो नहीं बन सकते। फिर 'जल में रहकर मगर से बैर!' भला, बचा समझ लेंगे। और सुनो, उस पर यह तुर्रा कि गाव की क़ुरबानी मजहबी बात ही नहीं।"

शफ़ाउल्लाह—"खुदा उसको इसका समर देगा, जो हज़रत ने फ़रमाया है कि गावकुशी मज़हबी बात नहीं। अजी हज़रत, हम लोगों के मज़हब का तो यही उसूल है कि काफ़िर को मार डालना, फिर अगर गाय मारी गई, तो क्या बेजा हुआ?"

करीमबख़्श—"हुज़ूर के इक़बाल से उसके बेहूदा बकने से क्या हो सकता है। हज़रत मुहम्मद अलैहुस्सलाम ने दीन इस्लाम का ऐसा अच्छा बंदोबस्त कर दिया है कि एक नहीं, लाख आदमियों के किए बाल भी बाँका नहीं हो सकता।"

शम्सुद्दीन—"लाहोलवलाक़ूवत, कैसी बातें आप लोग कर रहे हैं। अजी साहब, उसके किए कुछ भी नहीं हो सकता, आप लोग एक अदना आदमी के लिये इतना तरद्दुद क्यों करते हैं? जिस रोज़ हुक्म हो, वह नेस्तोनाबूद हो जाय।"

अताउल्लाह—"नहीं-नहीं, अभी इसकी जरूरत नहीं है, देखो तो सही, वह क्या करता है, तब देखा जायगा।"

शम्सुद्दीन—"बहुत खूब।"

वे लोग इसी तरह बातें कर रहे थे, परंतु लेखनी से वहाँ न रहा गया, इतना ही देखकर वहाँ से चल दी। निस्संदेह मुसलमान लोग बड़े ही क्रूर, हठी, खुशामदी होते हैं, जिसकी थोड़ी-सी चाशनी पाठकों ने चक्खी, बाक़ी फिर।

षष्ठ परिच्छेद

[पत्र]

चार बजने का समय था। मदनमोहन मौलवी अब्दुलअज़ीज़ के घर पर बैठे वार्तालाप कर रहे थे। सब लोगों ने प्रायः मुसलमानों का घर गंदा ही देखा होगा। एक ओर महापुराने घड़े में भरा हुआ पानी धरा है, और उसके पास बड़ी ही मैली सहन की दूसरी ओर दीवार पर दृष्टि दीजिए, तो पान की पीक से भरी है, परंतु अब्दुलअज़ीज़ का घर इन सब दोषों से निर्दोष था। जिधर देखो, उधर स्वच्छ। अब्दुलअज़ीज़ ने मदनमोहन से कहा—"जनाब! मैंने सुना है कि हाजी अताउल्लाह ने मेरे बरखिलाफ़ जोर बाँधा है, और लोगों को खूब भड़का रहे हैं। मुसलमानों से कहते हैं कि देखो, वह बे-दीन हो गया, और हिंदुओं को यह कहकर भड़काते हैं कि

जो अपना ही न हुआ, वह तुम्हारा क्या होगा। इसमें कोई-न-कोई मतलब है।"

मदनमोहन ने कहा—"कुछ परवा नहीं, देख लिया जायगा।"

अब्दुलअज़ीज—"ख़ैर, जब वे लोग कुछ करेंगे, तब देखा जायगा, मगर इस वक़्त तो असल बात यानी गायों के बचाने की तरकीब करनी चाहिए। मेरे दानिश्त में सबके पहले चंदा करके एक बाड़ा ऐसा हो जाना चाहिए, जिसमें गाएँ रहें, और उनकी हिफ़ाज़त की जाय। फिर पीछे से लोगों का दस्तख़त कराके अर्ज़ी गवर्नमेंट में भेजी जाय। यक़ीन है कि गवर्नमेंट ज़रूर ख़याल करेगी। अगर न भी किया, तो क्या हुआ? हमारे घर का बंदोबस्त तो हो ही चुका है, जितनी गाय की हिफ़ाज़त हम लोगों से होगी, उतनी ही सही। मैं तो इस नेक काम में अपनी जान तक देने को तैयार हूँ। ख़ुदा मेरी मुराद बर लावे कि मेरी जान इसी काम में जाय, क्योंकि आख़िर तो मरना ही है, इसी तरह हो, तो अच्छा है।"

मदनमोहन—"वाह मौलवी साहब, वाह! हमने इस दिल का आदमी कहीं नहीं देखा, न सुना ही है। आप धन्य हैं! यह निश्चय रखिए कि जिस काम में आप-ऐसे सच्चे लोग पड़ते हैं, वह अवश्य ही होता है। निस्संदेह आप (गद्गद स्वर से) पूजनीय हैं। यह निश्चय रखिए कि मैं भी आपके साथ जान देने को तैयार रहूँ,

ईश्वर वह दिन तो लावे। क्या इससे बढ़कर भी हमारे लिये आनंद का विषय होगा कि हमारी जान हमारी माता के लिये जाय? इससे बढ़कर और भी कोई सौभाग्य का विषय हो सकता है? क्या इससे विशेष और भी कोई पुण्य है? क्या जान इससे भी अधिक प्यारी है? क्या हम ऐसे निर्लज्ज हैं कि आप हम लोगों के लिये जान दें, और हम बैठे मुँह देखा करें? कदापि नहीं, कदापि नहीं। हा! हम लोग कैसे कृतघ्न हैं कि हमारी माता, हमारी जीवनाधार, हमारी परम पूजनीय गाय की यह दशा हो, और हम लोग बैठे मुँह देखा करें? क्या इससे बढ़कर भी निर्लज्जता का विषय हो सकता है कि आप मुसलमान होकर भी हम लोगों के लिये जान देने को तैयार हों, और हम लोगों को न सूझे? निस्संदेह हम लोगों पर मोहनी मंत्र-सा छा गया है।"

ये लोग इसी तरह बातें कर रहे थे कि द्वारपाल ने आकर कहा—"एक शख्स हाजी अताउल्लाह साहब के यहाँ से आया है और कहता है कि हमें खत भी देना है, और कुछ जबानी भी कहना है। क्या हुक्म होता है?"

अब्दुलअजीज ने कहा—"फ़ौरन् लिवा आओ।"

द्वारपाल के जाने पर अब्दुलअजीज ने कहा—"देखा चाहिए, अब क्या गुल खिलता है, क्योंकि यह वही शख्स है, जो हमारे निहायत बरखिलाफ है।"

मदनमोहन भी कुछ कहा चाहता था कि वह मनुष्य आ गया,

इससे चुप रह गया। उस मनुष्य ने आकर सलाम किया। अब्दुलअजीज ने सलाम का जवाब देकर कहा—"तशरीफ़ रखिए। कहिए, किधर आना हुआ ?"

उसने कहा—"जनाब, हाजी साहब ने सलाम कहा है और यह खत दिया है।" यह कहकर उसने पत्र दे दिया। अब्दुल-अजीज उसे खोलकर पढ़ने लगा—

"जनाबमन्,

मैंने सुना है, आप गायकुशी के बिलकुल बरख़िलाफ़ हैं, और हिंदुओं की तरफ़दारी करते हैं। क्या यह बात सच है ? अगर सच है, तो क्या आपको ख़ब्त हो गया है ? क्या आप मुसलमान नहीं हैं ? इन बातों का जवाब साफ़-साफ़ फ़ौरन् लिखिए। ज़्यादा लिखने की कोई जरूरत नहीं। लेकिन अगर यह बात सच है, तो समझ रखिए कि आपके हक़ में अच्छा न होगा। ज़्यादा तसलीमात। फ़क़त। अल्मरक़ूम २१ मई, सन् १८८१ ई०

आपका ख़ैरख़्वाह

अताउल्लाह

मुक़र्रर आँ कि

इस वक़्त मेरे पास चंद शख्स आपकी शिकायत कर गए हैं, इससे इत्तिला दी गई। आइंदा आपको अख़्तियार है। फ़क़त।"

इस पत्र को देखकर अब्दुलअजीज़ से मारे क्रोध के न रहा गया। चट काग़ज़ लेकर उत्तर लिखने लगा—

"मेहरबानमन्,

मैं न हिंदुओं का तरफ़दार हूँ न मुसलमानों का, लेकिन इस बारे में इंसाफ़ की रू से बेशक आप लोगों के बरख़िलाफ़ हूँ। आप लोगों से जो कुछ बन पड़े, बेशक कीजिए। बस, ज़्यादा गुफ़्तगू की ज़रूरत नहीं। फ़क़त।

आपका ख़ादिम

आसी अब्दुलअजीज़"

पत्र बंद करके उस आदमी को दिया। वह ख़त लेकर चला गया। अब्दुलअजीज़ ने मदनमोहन से कहा—"जनाब, इस वक़्त मुझे माफ़ कीजिएगा, मेरे सिर में दर्द होता है।"

मदनमोहन ने कहा—"तो इस समय मुझे भी आज्ञा हो, मैं जाता हूँ।"

अब्दुलअजीज़ ने कहा—"बहुत ख़ूब।"

मदनमोहन सलाम करके चला गया।

सप्तम परिच्छेद

[वर्षा की बहार]

अहाहा! आज तो बड़ी बहार का दिन है। देखो, पानी बरसा है, ठंडक छा रही है, सुंदर ठंडी-ठंडी हवा चित्त

को मोह लेती है। इस समय अँगरेजी प्रांत में बड़ी बहार है। चलो, आज हम अपने पाठकों को वहीं का तमाशा दिखलावें। अच्छा चलिए इस रास्ते से। हाय-हाय! यहाँ की सड़क कैसी बिगड़ रही है, जिसमें एक-एक बित्ता गाड़ी का पहिया धस जाता है। म्युनिसिपैलिटी इसका प्रबंध क्यों नहीं करती? अच्छा देखिए, यह नई सड़क आ पहुँची। अजी, यहाँ भी कीचड़ हो रहा है। यह बाग़ है, वाह! यह भी कैसा अच्छा स्थान है। निस्संदेह यह स्थान बेचारे शहर-वालों का बड़ा ही उपकार करता है। अब यह देखिए, पुल पर पहुँचे। यहाँ तो बड़ा ही आनंद प्राप्त होता है। वाह-वाह! यहाँ की सड़क बहुत ही अच्छी है। हाँ, क्यों नहीं, यह स्थान तो अँगरेजों के आवागमन का है न। यह देखिए, बंदी-गृह है, और यह राजा साहब की पुष्प-वाटिका है। अहाहा! यह तो बड़ा ही सुंदर स्थान है। निस्संदेह प्रशंसा-योग्य है। देखिए, संध्या कैसी फूल रही है। सूर्य की परछाहीं मेघों पर पड़ती है, और उसकी ज्योति पृथ्वी पर कैसी सुहावनी मालूम होती है, मानो मनुष्य, पृथ्वी इत्यादि सभी सोने की हैं।

इस समय शहर के प्रायः सब लोग (जिनके पास घोड़ा-गाड़ी है) अपनी-अपनी गाड़ियों पर सवार हो हवा खाने आते हैं। मदनमोहन अपने मित्र माधव के साथ (गाड़ी पर) हवा खाने आया था। माधव ने कहा—"क्यों जी, तुम्हें कुछ मालूम है कि मौलवी अब्दुलअजीज़ का क्या हाल है?"

मदनमोहन ने कहा—"हाँ साहब, मालूम है। बेचारे बड़ी ही आपत्ति में हैं। मुसलमान लोग उन्हें बहुत ही धमका रहे हैं, पर वह अपने काम में ज्यों-के-त्यों लगे हैं।"

माधव—"अजी, मुसलमान लोग बड़े ही दुष्ट होते हैं। हाय-हाय! उस बेचारे को बेबात ही दुख दे रहे हैं। पर वाह रे मौलवी साहब! उनका-सा मनुष्य तो हमने कभी नहीं देखा था। ईश्वर इसका बदला उन्हें देगा। अच्छा चलो, कहीं बैठें।"

मदनमोहन—"चलो, सरकारी बाग़ में बैठें। कोचवान, सरकारी बाग़ में चलो।"

गाड़ी बाग़ में पहुँची। ये दोनो उतरे, और भीतर जाकर थोड़ी देर इधर-उधर घूमते-फिरते रहे, फिर एक बेंच पर बैठकर आपस में बातें करने लगे। एक अँगरेज़ भी वहाँ घूम रहा था। इन लोगों को देख उसने सोचा कि हिंदू-मुसलमान के झगड़े का हाल इन लोगों से मालूम हो जायगा, और उन लोगों के पास जाकर, सलाम करके बैठ गया, और पूछा—"आप लोगों का नाम क्या है?"

मदनमोहन ने कहा—"मेरा नाम मदनमोहन है और इनका माधवप्रसाद।"

अँगरेज़—"आप लोगों को हिंदू-मुसलमानों की लड़ाई का हाल कुछ मालूम है?"

मदनमोहन—"जी हाँ, मुझे सब मालूम है।"

अँगरेज—"हम सुनना चाहते हैं। मेहरबानी करके आप बतला सकते हैं?"

मदनमोहन—"सुनिए, बक़रीद के रोज मुसलमानों ने गोवध किया था, परंतु जब हिंदुओं से न देखा गया, तो उन्होंने उसकी नालिश की, जो ख़ारिज हो गई, जिससे हिंदुओं को बड़ा दुःख हुआ, और अब इसकी अपील की गई है। देखा चाहिए क्या होता है।"

अँगरेज—"क्यों साहब, यह बात तो मुसलमानों ने अपने मजहब की रू से की है न।"

मदनमोहन—"जी नहीं। उनके मजहब में तो इसकी मनाही है, परंतु यह बात हिंदुओं का जी दुखाने के लिये की गई है।"

अँगरेज—"हाँ, तब तो बेशक ज़्यादती है। हमने सुना है, किसी मुसलमान से लड़ाई भी हुई है।"

मदनमोहन—"जी हाँ, उनका नाम मौलवी अब्दुलअज़ीज है। उन्होंने मुसलमानों के विरुद्ध कहा, और हिंदुओं का साथ देने के लिये भी वादा किया। इससे मुसलमान लोग बड़े ही रुष्ट हुए, और उस बेचारे को बहुत धमकाते हैं। देखा चाहिए, क्या होता है।"

अँगरेज—"इस वक़्त मेरे खाना खाने का वक़्त हो गया है, इससे मैं जाता हूँ। मेहरबानी करके आप अपना पता बतला दें। मैं जब शहर में आऊँगा, तो आपके पास ज़रूर हाज़िर होऊँगा।"

मदनमोहन—"आप चौक में आकर मेरा मकान पूछ लीजिएगा, मालूम हो जायगा।"

अँगरेज़ दोनो आदमियों से हाथ मिलाकर चला गया। बूँदें पड़ने लगीं। रात हो गई थी। मदनमोहन ने कहा—"चलो, अब घर चलें।"

माधव ने उत्तर दिया—"हाँ चलिए।"

दोनो वहाँ से उठकर बाहर आए, और गाड़ी पर बैठकर घर चले।

अष्टम परिच्छेद

[प्रेम-संभाषण]

रात्रि के समय मदनमोहन अपने कमरे में पलँग पर सोया था, उसकी स्त्री बैठी हुई सिर में तेल मल रही थी। कमरा न बहुत छोटा था, न बड़ा। शतरंजी और चाँदनी सारे कमरे में बिछी हुई थी। लैंप जलता था। पुस्तकें और कलम-दावात, काग़ज़ इत्यादि लिखने-पढ़ने की सब सामग्री रक्खी हुई थी। पानी बरस रहा था। ठंडी-ठंडी हवा चल रही थी। मदनमोहन ने कहा—"आज नींद नहीं आती, कुछ बातें करके जी बहलावें।"

स्त्री ने उत्तर दिया—"जो आज्ञा हो।"

मदनमोहन—"तुम अपनी अवस्था कहो और हम अपनी। पहले तुम्हीं कहो।"

स्त्री—"मैं अपनी अवस्था क्या कहूँ। मेरे सुख के कारण संसार में केवल आप ही हैं, और तो सब दुखदाई ही हैं।"

मदनमोहन—"क्यों, तुम्हें कौन-सा दुख है ?"

स्त्री—"चारो ओर से दुख-ही-दुख है। कहाँ तक वर्णन करूँ। देखिए, चाचीजी तो ऐसा दुख देती हैं कि बड़ा ही कष्ट होता है। जो कहीं उन्होंने मेरे हाथ में कोई पुस्तक देखी, तब तो फिर देखिए, कैसी बिगड़ती हैं। वह यही कहती हैं—'जब देखो, तब किताबें लिये रहती थी, न सीना, न पिरोना। ई कुल-बोरन कहाँ से आई चौका लगावे के।' बड़ी हैं, मैं कुछ कह तो सकती ही नहीं, अपना लहू पीकर चुप रह जाती हूँ। भाभीजी बेचारी तो बड़ी ही सीधी हैं, कभी कुछ नहीं कहतीं, और हमको बहुत प्यार करती हैं। पर वह बेचारी करें क्या ? जो कहीं मेरे पास से कुछ बोलीं, तो उनको भी झिड़क देती हैं। चाचाजी के मारे तो ऐसा नाक में दम है कि कुछ कहा नहीं जाता। जब देखो, तब आप ही की निंदा किया करते हैं। हमको इसका सबसे अधिक दुख होता है। आपकी निंदा मुझसे नहीं सुनी जाती, पर क्या करूँ चुपचाप सुना करती हूँ, और जब नहीं रहा जाता, तो रो देती हूँ। मुझको रात-दिन यही आपत्ति झेलनी पड़ती है। आप यह निश्चय रखिए कि मैं इन दुखों के मारे अब तक कभी न जीती, परंतु इतना ही सहारा है कि जब आपको देखती हूँ, सब भूल जाती हूँ।"

यह कहकर वह मारे प्रेम के रोने लगी। मदनमोहन उठ

बैठा, और समझाने लगा—"प्यारी ! तुम वृथा क्यों दुखी होती हो। यह तो भवसागर है, यहाँ तो सब दुख-ही-दुख है। उन लोगों की बात का तुम कुछ भी बुरा न माना करो। उनकी तो यह आदत ही है। हम रात-दिन यही सब सुना करते हैं, पर अपना काम किए चलते हैं। ऐसे लोगों की बात का बुरा मानना भी एक मूर्खता ही है।"

स्त्री ने कहा—"इसमें तो संदेह नहीं, पर मुझसे तो नहीं सुना जाता। मुझको सबसे बड़ा कष्ट तो तब होता है, जब चाचाजी बेबात ही आपकी निंदा करने लगते हैं। मैं अपने जी को बहुत रोके रहती हूँ, तिस पर भी नित्य रुलाई आती है। इसी के मारे मैं कभी अपनी लड़कई की सहेलियों को भी नहीं बुलाती कि कहीं इसमें भी कोई बात न निकले। उन लोगों ने कई दफ़े मिलने के लिये कहलाया भी, पर मैंने यही कह दिया कि 'अच्छा'। अब मुझको इस घर में रहने से बड़ा ही दुख होता है। निस्संदेह मेरी-सी अभागिनी बहुत कम होंगी।" (रोती है)

मदनमोहन—"हैं ! यह क्या, रोती क्यों हो ? (आँसू पोछता है) प्यारी ! रोओ मत, कभी तुम्हारे सुख का भी दिन आवेगा। तुम स्त्री हो, इससे तुम्हारा हृदय बड़ा ही कोमल है, बात-बात में दुख होता है, परंतु इसका फल कुछ भी नहीं। यह अच्छी तरह याद रक्खो कि जब तक वे लोग हैं, तभी तक हम लोगों को सुख है; नहीं तो मालूम हो जायगा। उनके

कहने का बुरा न मानना चाहिए। देखो, गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा है—

'तुलसी' बुरा न मानिए, जो गँवार कह जाय ;
जैसे घर का नरदवा बुरा-भला बह जाय।

फिर ये तो बड़े हैं। इनके कहने पर तो ध्यान ही न देना चाहिए; जो कहें, उसे सुन लेना चाहिए।"

स्त्री—"इसमें तो संदेह नहीं, पर कहाँ तक सहती जाऊँ।"

मदनमोहन—"अच्छा, अब इस पचड़े को जाने दो। मैं अपनी अवस्था फिर कभी कहूँगा। आओ, इस समय शतरंज खेलकर जी बहलावें।"

स्त्री—"बहुत अच्छा।"

उसने शतरंज निकालकर बिछाई। मदनमोहन ने कहा—"पहले कुछ शर्त लगा लो, तब खेलो।"

स्त्री ने उत्तर दिया—"अब जो कुछ हमारे पास बचा हो, उसको शर्त में लगा लीजिए, क्योंकि तन, मन, धन, तीनो तो पहले ही समर्पण कर चुकी हूँ।"

यह सुन मदनमोहन हँसने लगा, और खेलना प्रारंभ किया। पानी बरस रहा था, अँधेरी छाई थी, चारो ओर सुनसान था, सिवा बूँदियों के शब्द और बीच-बीच में किश्त और शह की पुकार के। आध घंटे तक गहरा खेल मचा रहा, अंत में स्त्री जीती। स्त्री ने कहा—"अब बताइए, मैं आपसे क्या लूँ ?"

मदनमोहन ने कहा—"जो चाहो।"

दोनो हँसने लगे। ये लोग थोड़ी देर तक चुहल (हँसी) की बातें करते और हँसते रहे। मदनमोहन ने कहा—"रात बहुत गई, अब सोना चाहिए।"

स्त्री ने कहा—"ठीक है, दोनो सोए। लेखनी भी विश्राम करने के लिये ठहरी।

नवम परिच्छेद

[बीजारोप]

दोपहर के समय खाना खाकर अब्दुलअजीज़ बैठा था कि डाकिए ने आकर एक पत्र दिया। अब्दुलअजीज़ ने उसे खोला। उसमें लिखा था—

"मौलवी अब्दुलअजीज़ साहब,

आपको क्या हुआ है? क्या आप हिंदुओं की तरफ़दारी के मुक़ाबिले में अपनी जान की कुछ हक़ीक़त नहीं समझते? क्या आप दर हक़ीक़त मुसलमान से पैदा नहीं हैं? आपको अच्छी तरह मालूम होगा कि मुसलमान लोग किस क़िस्म के आदमी होते हैं। आपके लिये सबसे बड़ी मजहबी बात काफ़िरों को सताना क्या, बल्कि मार डालना है, मगर आप इसके बिलकुल ख़िलाफ़ चलते हैं। इसका नतीजा अच्छा न होगा। देखिएगा, इसकी सज़ा आपको कैसी मिलती है।

वल्लाह, मैं सच कहता हूँ, अगर आप इस हरकत से बाज न आवेंगे, तो फिर आपका सर और दीन इस्लाम की तलवार होगी। खूब याद रखिएगा कि कोई हिंदू भी साथ न देगा। उस वक्त इसका मजा मालूम होगा। छिः-छिः! यह आपने कौन बात खयाल कर रक्खी है? मैंने इस खत को सिर्फ इसी गरज से लिखा है कि आप अब भी होशियार हो जायँ, और जान के ऊपर मेहरबानी करके इस हरकते-नाशाइस्तः से बाज आएँ। यक़ीन जानिए कि आपसे सब मुसलमान चिढ़े हैं। अगर वे लोग आपको मौक़े से पाएँगे, तो आपका बिलकुल खून पी जायँगे। आप अपने बुजुर्गों की तरफ़ खयाल कीजिए और उन लोगों के नाम को न डुबाइए। सब मुसलमान आपके खून के प्यासे हैं, मगर मैंने उनको यह कहकर बाज रक्खा है कि एक मर्तबे मैं उनको इत्तिला दे दूँ। फिर जो कुछ होगा, देखा जायगा। इसलिये मैं फिर से यही कहता हूँ कि आप अपने हरकते-नाशाइस्तः से बाज आएँ, यानी उस काग़ज को, जिस पर कि आपने लोगों के दस्तखत कराए हैं, फाड़कर फेंक दीजिए और उस रुपए को, जिसे चंदे में वसूल किया है, मसजिद बनाने में सर्फ़ कीजिए। वरना फिर आपका खानदान ही नेस्तोनाबूद हो जायगा। खबरदार! खबरदार!! खबरदार!!! फ़क़त।

आपका खैरख्वाह

एक मुसलमान"

अब्दुलअज़ीज़ ने इस पत्र को पढ़कर बड़ी बहादुरी से कहा—"कुछ परवा नहीं, समझा जायगा। क्या तुम्हारे ही हाथ-पैर हैं? मैं तो पहले ही अपनी जान से शर्त लगा चुका हूँ। 'हर्किदस्त अज़ जाँ बिशोयद हर्चि दर दिल आयद बिगोयद' मुझको अपने जान की कुछ परवा नहीं है—इस बारे में बाबू मदनमोहन से भी सलाह लेनी चाहिए। यही वक़्त मौक़े का है। (ज़ोर से) कोई है—बाबू मदनमोहन को बुला लाओ।" (बाहर से) 'जो हुक्म'। अब्दुलअज़ीज़ इसी तरह बैठा हुआ सोच रहा था कि उधर मदनमोहन बहुत घबड़ाया कि आज बेवक़्त क्यों बुलाया है। नौकर से पूछा। उसने कहा—"साहब, मुझे नहीं मालूम।" मदनमोहन चट उठ खड़ा हुआ, और अब्दुलअज़ीज़ के पास आया।

अब्दुलअज़ीज़—"आइए-आइए, बहुत अच्छे वक़्त आए। देखिए, इस ख़त को देखिए।"

अब्दुलअज़ीज़ ने उस पत्र को दिया, और मदनमोहन पढ़ने लगा। मदनमोहन का मुँह पत्र पढ़ते-पढ़ते लाल हो गया, और बड़े ज़ोर से उसने कहा—"कुछ हर्ज नहीं, समझ लेंगे। देखा चाहिए कि हमारी तलवार होती है और इस पत्र के लिखनेवाले का सर या हमारा सर और लिखनेवाले की तलवार। आप बैठे क्या हैं, चलिए, इसकी इत्तिला थाने में करनी चाहिए।"

अब्दुलअज़ीज़—"हाँ, ठीक है, मगर इस बात को बख़ूबी सोच लेना चाहिए कि कहीं पीछे से कुछ नुक़्स न निकले।"

मदनमोहन—"इसमें कौन-सा नुक़्स है। हाँ, यदि इत्तिला न कीजिएगा, तो अवश्य नुक़्स निकलेगा।"

अब्दुलअजीज—"ठीक है। अच्छा, बैठ जाइए, ज़रा ठंडे हो लीजिए, घबड़ाने की क्या ज़रूरत है। मगर इस बात का बंदोबस्त कर देना चाहिए कि वह दस्तख़तवाला काग़ज़ न जाने पावे।"

मदनमोहन—"अच्छा, इसका प्रबंध पीछे हो जायगा। पहले इसकी इत्तिला होनी चाहिए। मैं जाता हूँ, खाकर आऊँगा, तब थाने चलूँगा।"

अब्दुलअजीज—"बहुत ख़ूब, मगर जल्द आइएगा।"

मदनमोहन—"हाँ, मैं अभी आता हूँ।"

मदनमोहन यह कहकर चला गया, और अब्दुलअजीज एक पुस्तक उठाकर पढ़ने लगा।

दशम परिच्छेद

[पुलिस की कारवाइयाँ]

मदनमोहन और अब्दुलअजीज़ थाने में आए। थानेदार साहब मुसलमान थे। वह चौकी पर बैठे थे, और मुंशी क़लम-दान लिए पास बैठा था। दो-तीन कांस्टेबिल इधर-उधर घूम

रहे थे। एक भलामानुस बैठा था, और उसके पास दो कांस्टेबिल बैठे थे। एक सिपाही ने कहा—"साहोजी, ख़ूब माल खायके मोटाए हौ, ज़रा तोंद तो देखें।"

वह बेचारा हटा जाता था, और वह महाशय बढ़े जाते थे। उधर से दूसरे ने चपत भिड़ा ही तो दी, और कहा—"क्यों बे, चुपचाप नहीं बैठा रहता।"

उसने उत्तर दिया—"साहब, बैठे तो हैं, काहे मारथौ।"

कांस्टेबिल ने कहा—"हाँ बचा, हम सब जानते हैं। चोरी का माल १००) का १५) पर ख़रीदा, और अब बातें बतियाते हैं। बताओ, और माल कहाँ है?"

उसने कहा—"साहब, हम तो एतनै माल लिया रहा।"

कांस्टेबिल बोला—"हाँ ठीक है। अभी देखो। कुंदी होती है, तब पेट में से सब निकलता है।"

इतने में उधर से एक जमादार आया, और उस मनुष्य का हाथ पकड़कर कोने में ले गया, और कुछ बातें करने लगा।

अब्दुलअजीज़ ने थानेदार से कहा—"जनाब मुझे एक इत्तिला लिखानी है।"

थानेदार ने झिड़ककर कहा—"ठहरिए साहब, देखते हैं कि एक मुआमिला दरपेश है। इसको तय होने दीजिए, तब इत्तिला लिखी जायगी।"

अब्दुलअजीज़ समझदार था, इससे फिर कुछ न कहा, और चुपचाप बैठ रहा। उधर से जमादार साहब आए, और

थानेदार से कुछ बातें कान में कीं। थानेदार ने कहा—"अच्छा, करीमबख़्श को अपने साथ लेते जाओ।"

जमादार साहब एक कांस्टेबिल को और उस भलेमानुस को वहाँ से लेकर बाहर चले गए।

थानेदार ने अब्दुलअज़ीज़ से पूछा—"कहिए, आप क्या कहते थे?"

अब्दुलअज़ीज़ ने कहा—"देखिए, यह ख़त मेरे पास डाक से आया है, और लोग मुझे बहुत धमका रहे हैं। इसकी इत्तिला लिखकर रसीद मुझे दीजिए।"

थानेदार ने उस पत्र को लेकर पढ़ा, और कहा—"इसमें क्या बेजा लिखा है, आप क्यों नहीं उस काग़ज़ को फाड़कर फेक देते?"

अब्दुलअज़ीज़—"जनाब! मैं कैसे फाड़कर फेक दूँ। मैं तो इस काम को बेजा नहीं समझता।"

थानेदार—"मेरी दानिश्त में आपने सरासर बेजा काम किया। आप क्यों बेक़ायदा हिंदुओं की तरफ़दारी करते हैं?"

अब्दुलअज़ीज़—"इंसाफ़ भी तो कोई शै है। बेचारे हिंदुओं पर सरासर ज़ुल्म होता हुआ देखकर मुझसे तो नहीं सहा जाता।"

थानेदार—"क्या साहब, हिंदुओं पर क्या ज़ुल्म हुआ? हिंदू तो हम लोगों के ग़ुलामों के ग़ुलाम हैं।"

अब्दुलअज़ीज़—"देखिए, उनके मज़हब के बरख़िलाफ़

गायकुशी उनको दिखाकर होती है, क्या यह ज़ुल्म नहीं ?"

थानेदार—"इसमें तो कोई भी ज़ुल्म की बात नहीं। क्या हिंदुओं ही का मज़हब जो कुछ है, वह है; मुसलमानों का नहीं ?"

अब्दुलअज़ीज़—"क्यों नहीं। मगर मुसलमानों के मज़हब में कहाँ लिखा है कि गायकुशी करनी चाहिए ?"

थानेदार—"लिखा नहीं है, तो बुज़ुर्गों ने क्यों किया ?"

अब्दुलअज़ीज़—"आप मुझे लिखा दिखला दें, तब मैं मानूँ।"

थानेदार—"क्या आपको बुज़ुर्गों की बात पर एतबार नहीं ?"

अब्दुलअज़ीज़—"ऐसी बातों में तो नहीं।"

थानेदार—"तब तो आप बेशक मुसलमान नहीं हैं।"

अब्दुलअज़ीज़—"आपको इन बातों के कहने का क्या मजाज़ ? आप इत्तिला की रसीद मुझे दीजिए।"

थानेदार—"बहुत अच्छा, लीजिए। मगर मैं इसका बदला लूँगा सही।"

अब्दुलअज़ीज़—"बहुत ख़ूब।"

थानेदार ने मुंशी से इत्तिला लिखवाकर रसीद अब्दुलअज़ीज़ को दी। अब्दुलअज़ीज़ ने उसे लेकर पढ़ा, और थानेदार को सलाम कर, मदनमोहन को साथ ले वहाँ से चल दिया।

एकादश परिच्छेद

[हुंडी]

दोपहर के समय प्रायः लोग खा-पीकर सोने चले गए थे। उस समय एक हुंडी का दलाल मनीराम खटमल की कोठी में गया। पहरेदार से पूछा—"मुनीबजी कहाँ हैं ?"

पहरेदार ने कहा—"सूते के गए।"

दलाल—"जरा भाई, जगाय देव ; बड़ा जरूरी काम है।"

पहरेदार—"नाहीं साहब, अबहिन तो सूते हैं, हम न जगैबै।"

दलाल—"अरे भाई, एक हुंडी का भुगतान है, कहीं संझा तक भाव न घट जाय।"

पहरेदार—"तब एके लिये हम का करी साहेब ?"

दलाल—"अरे भाई, जो भुगतान होय जैहै, तो तुहूँ के कुछ मिल जैहै।"

पहरेदार—"अच्छा देखो, जाइत है, जो जागत होइहें, तो तोरी खबर कर देबै।"

दलाल—"हाँ, जाव तो सही, सौ बिस्से तो जगतै होइहें।"

पहरेदार ने सोचा, अभी मुनीबजी जागते ही होंगे, यदि सौदा हो जायगा, तो कुछ मिल जायगा। देखा, तो मुनीबजी जागते थे। कहा—"एकठे दलाल आए हैं, सो कहत हैं कि एक सौदा का तार है। का हुकुम होत है, लिवाय आई ?"

मुनीबजी ने कहा—"अच्छा, जाव लिवाय आओ।"

पहरेदार गया और दलाल को लिवा आया।

दलाल—"जैगोपाल साहेब, मूढ़चंद सुंदरलाल की एक दरसनी २५००) की है।"

मुनीबजी—"किस भाव ?"

दलाल—"साढ़े छ आना कहत हैं। सौदा बड़ा चोखा है।"

मुनीबजी—"नहीं भाई, छ आना में दें, तो करैं।"

दलाल—"अच्छा साहेब, आपकी परवानगी रही। हम जायके कहिथै, बनथै तो सौदा भुगताय देइथै।"

दलालराम वहाँ से उठकर बाहर आए। पहरेदार ने पूछा—"का साहेब, भुगतान भवा।"

दलाल ने कहा—"नहीं, अबहिन तो नाहीं भवा, पर रंग है। ऊ साढ़े छ आना माँगत है, और ई छ आना।"

दलालराम यह कहकर मूढ़चंद सुंदरलाल की कोठी में गए। मुनीबजी से कहा—"छ आना पर सौदा भुगतत है, का हुकुम होत है ?"

मुनीबजी ने अपने जी में सोचकर कहा—"अच्छा, भुगताय देव।"

दलालराम वहाँ से फिर मनीराम खटमल की कोठी में आए, और सिपाही से कहा—"लेव, सौदा तो भुगताय दिया।"

पहरेदार बड़ा ही प्रसन्न हुआ, और दोनो मुनीब के पास गए।

मुलाल—"मुनीबजी साहेब, सौदा तो भुगत गवा, लिखा लेव ।"

मुनीब ने जी में कहा—देखो, बड़ी ग़लती हुई । इस वक़्त साढ़े पाँच आना तक कहते तो होय जाता । ख़ैर, अब तो जो हुआ, सो हुआ । प्रकट में कहा—"अच्छा ।"

मुनीबजी ने कोठा खोलकर रुपए का एक तोड़ा, जिसमें २५००) था, निकाला, और उसमें से हिसाब करके कुछ रुपए निकाल लिए, और एक मनुष्य से कहा—"रुपया लेकर जाओ, जमा कराके आओ ।"

रुपया लेकर मूढ़चंद सुंदरलाल की कोठी में गया । वहाँ रुपया गिनकर जमा किया गया ।

पाठकों के कौतूहलार्थ हुंडी की नक़ल प्रकाशित की जाती है—

श्रीसिध कलकत्ता सुभ स्थान श्रीपत्री भाई मुन्नीलालजी जोग लिखा बनारस ते मूढ़चंद सुंदरलाल की जैगोपाल बंचना । आगे हुंडी किता १ आप ऊपर किया । रुपया २५०० अनकन पचीस सौ के नीमे साढ़े बारह सौ के दूने पूरे देना । इहाँ रक्खे मनीराम खटमल के मिती जेठ सुदी १३ से ३१ दिन पीछे धनी जोग रुपया चलन बजार हुंडी की रीत ठिकाना लगाय दाम चौकस कर देना—आगे जादा सुभ मिती जेठ सुदी १३ सं० १९३८

द्वादश परिच्छेद

[गोहितकारिणी सभा]

'गोहितकारिणी' सभा की सूचना पाकर विद्वान् लोग बड़े ही प्रसन्न हुए, और नियत समय पर नियत स्थान पर बहुत-से लोग इकट्ठे हो गए। अब्दुलअजीज इस सभा का सभापति था, और मदनमोहन लेखाध्यक्ष। पाठकों को भली भाँति ज्ञात हो गया होगा कि ये लोग कैसे दृढ़प्रतिज्ञ हैं। देखिए, लोगों ने इन लोगों को कितना धमकाया, परंतु इन लोगों ने उस धमकी में आकर अपने काम के उद्योग को न छोड़ा। धन्य! धन्य!! धन्य!!! सबके पहले मदनमोहन खड़ा हुआ, और कहने लगा—

"सभ्य महोदयगण!

"आज हम लोगों ने आप लोगों को कष्ट दिया है। इसका कारण आप लोगों को भली भाँति ज्ञात नहीं, इससे मैं उसे सविस्तर वर्णन करता हूँ।

"आप लोग भली भाँति जानते होंगे कि गोजाति से हम लोगों को कैसा लाभ है। हम हिंदोस्तानी लोग तो गऊ ही के कारण जीते हैं। जिस दिन भारतवर्ष में गौएँ न होंगी, उस दिन हम लोगों का जीवन कठिन हो जायगा। क्योंकि हम लोगों के बालक जब से मा का दूध पीना छोड़ते हैं, तब से गोदुग्ध ही का सेवन करते हैं। यदि गोदुग्ध न हो, तो उनका

जीवन कठिन है। फिर देखिए, ऐसे बहुत कम लोग हैं, जो गौ का दूध, घी, दही इत्यादि न सेवन करते हों। यदि ऐसे हैं भी, तो वे अन्न तो खाते ही हैं। अन्न गौ ही से होता है, क्योंकि गौ के बच्चे ही खेत को गोड़ते-सींचते और अंत में अन्न को भूसे से जुदा करते हैं। जिस समय घोड़ा-गाड़ी और रेल न थी, इन्हीं बैलों के रथ पर लोग चढ़ते थे, और अब भी अन्न आदि गाँवों से बैलों पर और बैल की गाड़ियों पर शहर में अथवा स्टेशनों पर लाए जाते हैं। निदान हम लोगों के काम की ऐसी कोई भी वस्तु नहीं, जिसमें गाय की सहायता न हो। सभी जगह इनका गोबर काम आता है। प्रायः इसी की चिपड़ी से बहुत लोग रसोई करते हैं। जब हम लोग कोई दुष्कर्म करते हैं, तब इसी गोबर और गोमूत्र से शुद्ध होते हैं। और कहाँ तक—मरने के समय गौ के लिये इस आशा पर दान करते हैं कि इसकी पूँछ पकड़कर पार उतरेंगे। शास्त्रों के अनुसार हम लोगों को गाय से बढ़कर और कोई वस्तु ही नहीं। निदान गौएँ इस देश की जीवना-धार हैं। इन्हीं कारणों से आगे के लोग तन, मन, धन से गोरक्षा करते थे। देखिए, इन्हीं गौओं के कारण अगले काल में कितनी लड़ाइयाँ हुई हैं, कितने सिर कटे हैं। भगवान् श्रीकृष्णचंद्रजी इन्हीं गौओं को चराते थे। कहाँ तक कहा जाय, अगले काल में गौ के लिये प्राण कोई वस्तु ही नहीं था।" (ताली बजी।) उसने फिर कहना प्रारंभ किया—

"हा ! अब वही गौ इस दुरवस्था में है। क्या अब गौओं से हम लोगों का कुछ उपकार नहीं होता ? क्या अब गाय का दूध हम लोग नहीं पीते ? क्या अब बैल गाय से नहीं होते ? या अब अन्न बैलों से नहीं उत्पन्न होता ? क्या अब हम लोग आर्य नहीं हैं ? क्या केवल नाममात्र के हैं ? क्या हम लोग आर्यों के वंश में नहीं हैं ? क्या अब यह वही भारत-भूमि नहीं है ? क्या हम लोगों की बुद्धि नष्ट हो गई ? क्या हम लोग ऐसे डरपोक हो गए कि मुसलमानों के डर से अपनी माता के बचाव का उपाय न करें ?

"क्या सरकार न्याय-परायण नहीं है ? क्या हम लोगों को लज्जा नहीं आती ? क्या अब तक यह आशा है कि सरकार गोवध भारतवर्ष से उठा देगी ? फिर क्यों हम लोग कान में तेल डाले बैठे हैं ? धिक्कार है हम लोगों को कि हम लोगों के सामने हमारी जीवनाधार वस्तु की यह दशा हो ! धिक्कार है हम लोगों के आर्यत्व को कि हमारे मत की परम पूजनीय गाय की यह दशा हो ! धिक्कार है हम लोगों के जीवन को कि बुद्धि रहते भी कुछ उपाय न करें ! धिक्कार है हम लोगों की निद्रा पर कि ऐसे उन्नति के प्रातःकाल में भी न जागें (ताली)। धिक्कार ! धिक्कार !! धिक्कार !!! (तालियाँ बजती हैं) त्राहि ! त्राहि !! मुसलमान लोग इस बेचारे, निरपराध जीव पर भी दया नहीं करते । मुसलमानों ने गोवध करके हम लोगों को बड़ा ही दुखी किया है, जिसकी नालिश हुई

है। परंतु हम लोगों को केवल इसी पर संतोष न करना चाहिए, वरन् इसके लिये ऐसा उद्योग करना चाहिए कि गो-जाति को सदैव के लिये लाभ हो।

"अब देखना चाहिए कि गवर्नमेंट ऐसी आज्ञा देगी या नहीं कि हिंदुस्थान-भर से गोवध उठ जाय ? मेरी समझ में यह बात असंभव मालूम होती है, क्योंकि इसके विषय में श्रीयुत भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्रजी ने लक्षों मनुष्यों के हस्ताक्षर कराके निवेदन-पत्र आर्य-धर्म-रक्षक गवर्नमेंट में भेजा था। इस पर जब कुछ भी ध्यान न दिया गया, तो फिर अब कौन-सा उपाय ऐसा है, जिससे गोजाति का उपकार हो ? इसका उपाय हम लोगों ने यही सोचा है कि जो लोग गाय नहीं रख सकते, और उनके पास गाएँ हैं, तो वे उनको कम दाम पर बेच डालते हैं, और प्रायः क़साई लोग लेकर मारते हैं। इसलिये जहाँ ऐसी गाएँ मिलें, मोल लेकर उनको रक्षा करनी चाहिए, और ऐसा यत्न करना चाहिए, जिसमें गाएँ ऐसे लोगों के हाथ में न जाने पावें। इसके लिये सबके पहले द्रव्य चाहिए, क्योंकि जो किसी ग़रीब के पास गौ है, और वह बेचना चाहता है, तो यदि और कोई न लेगा, तो क़साइयों ही के हाथ बेचेगा। इससे ऐसा होना चाहिए कि जो दाम क़साई दें, उससे विशेष देकर गाय ले ली जाय। इसके लिये द्रव्य की आवश्यकता है। जब द्रव्य का उपाय हो गया, तब फिर इस बात के लिये यत्न करना चाहिए

कि कोई हिंदू गाय को अनजाने मनुष्य के हाथ न बेचे। यदि बेचेगा, तो जाति-भ्रष्ट होगा। इसलिये यत्न पीछे से होना चाहिए। पहले द्रव्य का प्रबंध होना चाहिए, क्योंकि ऐसा कौन मूर्ख होगा, जो विशेष दाम मिलने पर भी क़साई के हाथ गाय बेचेगा। इससे गौओं का बड़ा उपकार होगा, अर्थात् गोवध करनेवालों को बहुत कम गाएँ मिलेंगी, जिन को वे मारें।

"इसका यत्न हम लोगों ने कुछ-कुछ किया है, अर्थात् चंदा किया गया है, जिसमें एक हज़ार रुपए के लगभग नक़द इकटठा हो गया है, और पचास रुपए महीना भी हो गया है। इसके प्रबंध के लिये एक सभा होनी चाहिए। इसी-लिये आप लोगों को कष्ट दिया गया है। इसमें जो कुछ आप लोगों की सम्मति है, उसे प्रकट करें। इसके थोड़े-से नियम मैंने लिखे हैं, उन्हें आप लोगों को सुनाकर आशा रखता हूँ कि इस शुभ कार्य में आप लोग भी सहायता देंगे, और जो कुछ अनुचित हो, उसे सुधार लेंगे—

१—इस सभा का नाम गोहितकारिणी सभा होना चाहिए।

२—इसका मुख्य उद्देश गोरक्षा है।

३—यह सभा पाक्षिक हुआ करे।

४—इसके व्याख्यान केवल गोविषय पर हुआ करें।

५—इसका हिसाब हर सभा में लेखाध्यक्ष को समझाना चाहिए।

६—सब लोगों को साल में अपने एक दिन की आमदनी देनी चाहिए।

७—जिस विषय में कोई महाशय प्रस्ताव करें, वह यदि अच्छा हो, तो सभा उसका यत्न करे।

८—इसके सभासद् वे ही लोग होंगे, जो इसके चंदे में सहायता देंगे, और सभापति तथा लेखाध्यक्ष वह होगा, जिसे सब सभा स्वीकार करे।" (मदनमोहन बैठता है। ताली बजती है।)

अब्दुलअजीज़ ने खड़े होकर कहा—"बाबू मदनमोहन साहब ने जो कुछ कहा, मैं बदिल इसकी ताईद करता हूँ। गोकि मैं मुसलमान हूँ, लेकिन मैं मुसलमानों की इस बात से निहायत नाराज़ हूँ। क्या बाइस है कि हिंदू लोग बेबात सताए जावें ? मुझे बड़ा ताज्जुब है कि बावजूदे कि मुसलमानों के मजहब में भी गायकुशी मना है, फिर क्यों ऐसा किया जाता है ? देखिए, क़ुरान-शरीफ़ में लिखा हुआ है—'ज़ाबह उल बक़र क़ात उश् शजर बाअ उल बशर शारब उल खमर' यानी बैल मारनेवाले, वृक्ष काटनेवाले, मनुष्य बेचनेवाले, और मदिरा पान करनेवाले की नजात कभी न होगी। फिर क्या कोई नया क़ुरान बनाया गया है ? आप लोग खयाल फ़रमावेंगे, तो साफ़ बदमाशों की शरारत है। इन लोगों ने जो-जो धमकियाँ मुझे दी हैं, वह साफ़ ज़ाहिर करती हैं कि इन लोगों के पास कोई भी सुबूत इस बात का नहीं कि गोवध होना चाहिए। देखिए, मेरे पास एक खत आया

है, जिसमें भेजनेवाले का नाम नहीं है। उसे मैं पढ़कर सुनाता हूँ—

'मौलवी अब्दुलअजीज साहब !

'आपको क्या हुआ है ? क्या आप हिंदुओं की तरफ़दारी के मुक़ाबिले अपनी जान की कुछ हक़ीक़त नहीं समझते ? क्या आप दर हक़ीक़त मुसलमान से पैदा नहीं हैं ? आपको अच्छी तरह मालूम होगा कि मुसलमान किस क़िस्म के आदमी होते हैं। आपके लिये सबसे बड़ी बात काफ़िरों को सताना क्या, बल्कि मार डालना है, सो आप इसके बिलकुल बरख़िलाफ़ चलते हैं, इसका नतीजा अच्छा न होगा। देखिएगा, इसकी सजा आपको कैसी मिलती है। वल्लाह, मैं सच कहता हूँ, अगर आप इस हरकत से बाज़ न आएँगे, तो फिर आपका सर और दीन इस्लाम की तलवार होगी। ख़ूब याद रखिएगा कि कोई हिंदू भी साथ न देगा। उस वक़्त इसका मजा मालूम होगा। छिः-छिः.! यह आपने कौन बात ख़याल कर रक्खी है ? मैंने इस ख़त को सिर्फ़ इस ग़रज से लिखा है कि आप अब भी होशियार हो जायँ, और जान के ऊपर मेहरबानी करके इस हरकते नाशाइस्ता से बाज़ आएँ। यक़ीन जानिए कि आपसे सब मुसलमान चिढ़े हुए हैं। अगर वे लोग आपको मौक़े से पाएँगे, तो आपका बिलकुल ख़ून पी जायँगे। आप अपने बुज़ुर्गों की तरफ़ ख़याल कीजिए, और उन लोगों के नाम को न डुबाइए। सब मुसलमान

आपके खून के प्यासे हैं। मगर मैंने उन्हें अभी यह कहकर बाज रक्खा है कि एक मर्तबे में उन्हें इत्तिला दे दूँ, फिर जो कुछ होगा, देखा जायगा। इसलिये मैं फिर से यही कहता हूँ कि आप अपनी हरकते नाशाइस्ता से बाज आएँ, यानी उस कागज़ को, जिस पर आपने दस्तखत कराए हैं, फाड़कर फेंक दीजिए, और उस रुपए को, जिसे चंदे में वसूल किया है, मसजिद बनाने में सर्फ़ कीजिए, वरना फिर आपका खानदान ही नेस्तोनाबूद हो जायगा। खबरदार! खबरदार!! खबरदार!!! फ़क़त।

आपका खैरख़्वाह
एक मुसलमान'

"देखिए, मुसलमानों की शरारत इस खत से साफ़ झलकती है। मैंने इसकी इत्तिला थाने में कर दी है, और आप लोगों से भी एहतियातन् अर्ज़ करता हूँ। अगर खुदानख़्वास्ता कोई बात हो, तो आप लोग इसके गवाह रहेंगे। खैर, अब आज जो आप लोगों को तकलीफ़ दी गई है, उस बारे में मैं भी कुछ कहा चाहता हूँ।

"देखिए, गौ आप लोगों के मजहब में जिस क़दर इज्ज़त की चीज़ है, वह आप लोगों पर बख़ूबी जाहिर ही है, और जो कुछ गौ से फ़ायदा होता है, वह इस क़दर है कि बयान नहीं किया जा सकता। अगर खयाल करके देखिए, तो हिंदोस्तानी लोगों की जिंदगी सिर्फ़ गौओं ही से है, जिस

रोज़ गौ न होगी, उस रोज़ हम लोग एक भी न होंगे। इस पर एक सवाल यह हो सकता है कि क्या एक-दो गौ के मारे जाने से सब गौओं को नुक़सान पहुँच सकता है? हरगिज़ नहीं। लेकिन एक-दो गौ तो सिर्फ़ ज़ाहिरा मारी गई हैं, पोशीदा तौर से तो सैकड़ों गौएँ रोज़ मारी जाती हैं। फिर यह ख़याल कीजिए कि हज़ारों गौ इस तरह मारी जायँ, और हज़ारों मौत से मरें, तो आख़िर को एक-न-एक रोज़ एक गाय भी न बच सकेगी, क्योंकि जितनी मारी जाती हैं और मरती हैं उससे बहुत कम पैदा होती हैं। पस, साफ़ ज़ाहिर है कि जब आमदनी कम है और ख़र्च ज़्यादा, तब एक-न-एक दिन दिवाला निकल ही जायगा। इसके लिये जो बात बाबू मदनमोहन ने कही बहुत अच्छी है। गोकि अभी यही साबित होगा कि इससे कुछ फ़ायदा न होगा, क्योंकि इससे गाय मारनेवाले बाज़ न रहेंगे, मगर ख़याल किया जाय, तो साफ़ ज़ाहिर होगा कि ख़ामख़्वाह वे लोग बाज़ रहेंगे, क्योंकि जब उनको गाय मिलेगी ही नहीं, तो मारेंगे कहाँ से? इससे मैं उम्मेद करता हूँ कि आप लोग इस बारे में ज़रूर मदद देंगे।"

(अब्दुलअज़ीज़ बैठ जाता है। ताली बजती है।)

माधव ने खड़े होकर कहा—"क्या आप आर्यों को लज्जा नहीं आती कि एक मुसलमान आप लोगों का पक्षपात करता है, वरंच जान देने को तैयार है, और आप लोग

अभी तक कान में तेल डाले बैठे हैं ? अब उठिए, चेतिए, यही समय चेतने का है। बाबू मदनमोहन साहब का कहा हुआ उपाय गोरक्षा के लिये बहुत अच्छा है। हम लोगों को इसमें सहायता देनी चाहिए। उस सभा के सभापति मेरी समझ में यदि मौलवी अब्दुलअजीज़ साहब किए जायँ, तो बहुत ठीक होगा, और लेखाध्यक्ष बाबू मदनमोहन साहब।" (माधव बैठता है। ताली बजती है।)

इस प्रस्ताव को सब सभासदों ने स्वीकार किया, और मौलवी अब्दुलअजीज़ सभापति किए गए, और बाबू मदनमोहन लेखाध्यक्ष। मदनमोहन और अब्दुलअजीज़ की वक्तृता ने लोगों पर बड़ा ही असर किया। जिन लोगों ने चंदे में कुछ नहीं दिया था, उन्होंने भी उस काग़ज़ पर, जो चंदे का था, हस्ताक्षर किए। इसके पश्चात् सब सभासदों का नाम मदन-मोहन ने लिखा, और दूसरी सभा में इसके नियमों को लिखकर पेश करने की प्रतिज्ञा की। इसके पश्चात् सभापति को धन्यवाद देकर सभा विसर्जन हुई। लोग इन दोनो महाशयों की प्रशंसा करते हुए अपने-अपने घर गए।

त्रयोदश परिच्छेद

[पुस्तकालय]

५ बजे सायंकाल को प्रायः पढ़े-लिखे लोग पुस्तकालय में आते हैं, क्योंकि पुस्तकालय में हिंदी, अँगरेज़ी, फ़ारसी के

समाचार-पत्र आदि आते हैं, और हर तरह की पुस्तकें भी रहती हैं, जिनसे लोग अपना जी बहलाते और बहुत-से नए लोगों से मिलकर चित्त प्रसन्न करते हैं। मुंशी शीतलाप्रसाद इसके अध्यक्ष हैं, और इनके मित्र हैं बाबू गनपतदास। मुंशी शीतलाप्रसाद बैठे थे, बाबू गनपतदास भी आ बैठे। मुंशी शीतलाप्रसाद ने पूछा—"कहिए बाबू साहब, मिज़ाज शरीफ़? कहाँ से तशरीफ़ लाते हैं?"

गनपतदास ने उत्तर दिया—"जी हाँ, आपकी इनायत से। ज़रा मैं बाग़ में हवा खाने गया था।"

शीतलाप्रसाद—"कुछ नई ख़बर कहिए।"

गनपतदास—"भला, जो ख़बर आप जानेंगे, वह मैं जान सकता हूँ? आप ही कुछ सुनाइए।"

शीतलाप्रसाद—"बहुत ख़ूब। लीजिए, सुनिए। कल मुझे कलक्टर साहब ने बुलाया था। जब मैं गया, तो उठ खड़े हुए, और बोले, 'आइए मुंशी साहब, बैठिए।' जब मैं बैठ गया, तो कहने लगे, 'हमने आपको टैक्स लगाने का काम इसलिये सुपुर्द किया है कि आप गवर्नमेंट के बड़े ख़ैरख़्वाह हैं। हमें उम्मेद है, आप गवर्नमेंट की तरफ़दारी करेंगे, नकि काले आदमियों की। देखिए, पारसाल से इस साल टैक्स कम वसूल हुआ है, इसके लिये मेरी गवर्नमेंट से बड़ी शिकायत आई है। इससे आप इस कमी को पूरा कर दीजिए, ताकि गवर्नमेंट मुझसे नाराज़ न हो। इसका एहसान मेरे ऊपर

होगा। अगर यह काम आप मेरे हस्बख़्वाह कर देंगे, तो मैं गवर्नमेंट से 'राय' का ख़िताब दिला दूँगा।' मैंने जवाब दिया—'बहुत अच्छा, ऐसा ही होगा। देखिए तो सही, अब कितना टैक्स वसूल होता है। आप मुझे ख़िताब का क्या लालच देते हैं, इसका मुझे ख़ुद ख़याल है।' तब साहब ने कहा—'नहीं-नहीं, मैं लालच नहीं देता, मैं सच कहता हूँ, इससे मेरा मतलब यही है, जिससे इस काम में आपका जी लगे।' तब मैं वहाँ से उठा। साहब बहादुर मुझे दरवाज़े तक पहुँचा गए। उस वक़्त से मुझे इसकी फ़िक्र दामनगीर है, महल्ले-मुख़तारों को बुलाया है।"

यह इसी तरह अपनी डींग हाँक रहे थे कि एक फ़ौजी गोरा आया, तब तो डरे और उठ खड़े हुए। बड़ी नम्रता से उसे एक कुरसी पर बैठाया। गोरे ने कहा—"वेल, हम आज का 'पायोनियर' डेखना माँगटा।"

शीतलाप्रसादजी चट हाथ जोड़कर बोले—"हुज़ूर, अभी लाया।" और भीतर से 'पायोनियर' लाकर गोरे को दिया। मन में कहते थे, यह कहाँ की आफ़त आई, कहीं कुछ कह न दे।

गोरा थोड़ी देर बैठा रहा, और 'पायोनियर' उलट-पलटकर देखता रहा, फिर कहने लगा—"अब हम जाटा है।"

शीतलाप्रसाद उसे दरवाज़े तक पहुँचा आए, और गनपतदास से कहने लगे—"जनाब बाबू साहब, इसके आने से मैं डर

गया, क्योंकि गोरी खाल है, शायद कुछ कह दे, तो मैं क्या करूँ ? बारे ख़ैरियत हुई कि जल्द चला गया।"

गनपतदास ने कहा—"जी हाँ, ठीक है।" (मन में) झूठ बोलने की भी हद होती है, कहाँ तो कलक्टर साहब को वह शेख़ी दिखला आए, और कहाँ एक गोरे से इतनी दहशत। बस, यह 'अंधों में काने राजा' हैं।

इतने में एक महल्ले-मुख़तारजी आ पहुँचे। यह जाति के अहीर हैं। एक मैली-सी धोती पहने और मैला दुपट्टा ओढ़े थे। पगड़ी भी मैली। शीतलाप्रसाद ने कहा—"अहिरऊ !"

उसने कहा—"का साहब, का हुकुम होत बाय ? एह वखत हम गैयन के सानी देत रहली, आपकै आदमी पहुँचल, सब छोड़-छाड़के तुरंतै चलल आइली।"

शीतलाप्रसाद लाल-पीले होकर बोले—"क्या हम तुम्हारे नौकर हैं, जो इतनी जल्दी कर रहे हो। बैठो, अभी हमें फ़ुरसत नहीं है।"

महल्ले-मुख़तार जी में कहने लगा—एके बड़ी सेखी भइल बाय, तोंद फुलायके बैठ गइलैं, बस, नवाबी छाटै लगलैं। भला, बचा, समुझ लेब। (प्रकट) "साहब, हमें जरूरी काम रहल, एहसे कहली। अच्छा, बैठल रहब।"

शीतलाप्रसाद ने कहा—"अच्छा, सुनो। कलक्टर साहब ने कल हमें बुलाया था, सो कहा है—अब की साल टिकस बहुत कम वसूल हुआ, सो आप इसकी तदबीर कीजिए। इस-

लिये हमने तुम्हें बुलाया है। तुम अपने महल्ले के लोगों का नाम लिखकर हमें दो। सुक्खी तमोली को बड़ी आमदनी है, इस पर ५०) लगावेंगे।"

महल्ले-मुख़तार—"जो ऊ उजुरदारी:करिहै, तो ?"

शीतलाप्रसाद—"तो क्या हुआ। साहब कलक्टर का तो हुक्म ही है। उजुरदारी ख़ारिज हो जायगी। अच्छा, इस वक़्त तो हमें काम है, इससे जाते हैं, तुम कल आना।"

सब लोग वहाँ से चले गए। पुस्तकालय बंद किया गया।

चतुर्दश परिच्छेद

[वीर स्त्री]

उजेली रात थी, गरमी की ऋतु। सभी लोग छत पर सोते थे। चोर, व्यभिचारी, मज़दूर और स्त्री-पति के आनंद का समय था। अब्दुलअज़ीज़ इस आनंद के समय अपने घर की छत पर बैठा हुआ अपनी प्राणप्यारी स्त्री से बातें कर रहा था। चाँदनी छिटकी थी। बिछौना, कपड़ा आदि सभी वस्तुएँ उज्ज्वल थीं। गरमी की धूमधाम थी। पंखे से हाथ को और हाथ से पंखे को कष्ट होता था। कभी-कभी थोड़ी-सी हवा भी आ जाती थी। सब लोग गरमी से व्यग्र थे। गरमी ने अपना ठाट-बाट ऐसा जमा लिया था कि नींद बेचारी को कहीं शरण न मिलती थी। लोग बैठकर रात गवाँ रहे थे।

मच्छरों और खटमलों की विशेषता थी, जो लहू का विध्वंस किए डालते थे। दीवार, छत आदि से ऐसी भभक निकलती थी, मानो भट्ठी सुलग रही है। प्यास का ऐसा ज़ोर-शोर था कि बहुत-से झज्झर खाली हो गए थे, परंतु गला सूखा ही जाता था। निदान इस समय गरमी अपनी सब सेना ले धावा कर रही थी। इस गरमी में अब्दुलअज़ीज़ की स्त्री का कलेजा मुसलमानों की शत्रुता का हाल सुनकर सुलग रहा था। उसने पूछा—"हैं, क्या यह बात दर हक़ीक़त सच है? हाय-हाय! तब तो ग़ज़ब हुआ। आपको मेरी क़सम, हँसी न कीजिए। सच-सच कह दीजिए।"

अब्दुलअज़ीज़ ने कहा—"वल्लाह, यह बात सच है। मेरे इस वल्लाह को वैसा न समझना, जैसा मुसलमान लोग हर बातों में इस्तेमाल करते हैं। मगर 'ख़ुदा की क़सम' समझना। लेकिन तुम हरगिज़ न घबराओ। औवल तो अँगरेज़ी राज्य में ऐसा करेंगे, तो वे भी सज़ा पाएँगे। दोयम, मेरा मददगार ख़ुदा है, उन कमबख़्तों के किए क्या हो सकता है। फ़र्ज़ करो, अगर हम लड़कर मारे गए, तो भी हमारे दोनो हाथ लड्डू हैं, यानी उधर तो बिहिश्त मिलेगी, इधर नामवरी। फिर डरना क्या? यहाँ तो हर तरह फ़ायदा-ही-फ़ायदा है।"

वह बेचारी कुछ न बोली, चुपचाप बैठी सोचा की। अब्दुलअज़ीज़ हँसकर बोला—"क्या सोच रही हो?"

उसने कहा—"जी, कुछ नहीं।"

अब्दुलअजीज़ ने कहा—"नहीं-नहीं, कुछ तो बेशक सोचती हो। सच-सच बता दो, क्या सोचती हो?"

उसने कहा—"क्या बतावें, कुछ बात हो, तो बतावें। आप तो सब जानते ही हैं कि औरतों की आदत कैसी होती है, ज़रा-सी बात में भी घबरा जाती हैं।"

अब्दुलअजीज़ ने कहा—"तुम्हें हमारी क़सम, सच बता दो।"

उसने उत्तर देने के बदले रो दिया।

अब्दुलअजीज़ ने कहा—"हैं, यह क्या! रोती क्यों हो? तुम तो ऐसा कभी नहीं करती थीं। आज है क्या? दूसरी औरतों के और तुम्हारे मिज़ाज से तो बहुत फ़र्क़ है। पर तुम्हारा मिज़ाज बिलकुल बच्चों का-सा हो रहा है।"

उसने उत्तर दिया—"मेरा सारा घर उजड़ा चाहता है, हिंदुस्तान का एक बड़ा भारी जवाहिर बरबाद हुआ चाहता है। फिर भी न रुलाई आवे? मैं सिर्फ़ इतनी बात जानना चाहती हूँ कि मैं क्या करूँगी?"

अब्दुलअजीज़—"तुम क्यों घबराती हो? अगर ख़ुदा-नख्वास्ता ऐसा हुआ, तो ख़ुदा के फ़ज़ल से तुमको खाने-पहनने की ज़रा भी तकलीफ़ न होगी। मुसलमानों में दूसरी शादी का रवाज भी है। दूसरी शादी कर लेना।" (हँसता है।)

स्त्री—"हाय-हाय! क्या आपको इस बात का यक़ीन है कि

मैं दूसरे से शादी करूँगी। आज यह मालूम हुआ कि आप मुझे ज़रा भी नहीं चाहते। हाय ! हमारी क़िस्मत ही ऐसी है। आप यक़ीन जानिए कि अब आप मेरा मुँह न देखेंगे। आप यह कहते हैं कि मरने पर दूसरी शादी कर लेना, सो इसकी नौबत ही न आवेगी। यह तो आपने बहुत अच्छा सुझा दिया। उस वक़्त तो तकलीफ़ के साथ मरती, मगर अब तो सहूलियत से जान दूँगी। अहाहा !"

इतना कहकर वह तो बड़ी प्रसन्न हुई, पर अब्दुलअज़ीज़ बहुत ही घबराया, और कहने लगा—"हमने तो हँसी की थी, तुमने सत्य मान लिया। ख़ुदा के वास्ते ऐसा ग़ज़ब न करना, नहीं तो फिर हमको भी तुम्हारे साथ दोज़ख में जाना पड़ेगा।"

उसने कहा—"नहीं-नहीं, अब मैं नहीं मानने की, आप इसका तमाशा दो ही चार दिन में देखेंगे।" मन में कहा, और कुछ हो या न हो, जैसा तंग इन्होंने हमें किया है, वैसा ही मैं भी करूँगी। अभी मुझे बेवक़ूफ़ बना रहे थे, अभी आप ही बने जाते हैं। ज़रा देखें तो सही, क्या-क्या तमाशा होता है। प्रकट में कहा—"अब आप चाहते हैं कि झूठ-मूठ समझाकर मुझे बाज़ रक्खें, यह हरगिज़ न होगा। आप जो चाहें, सो कहें, मैं न मानूँगी। भला, इससे अच्छा और कौन उपाय है कि मैं ऐसा न करूँ। आप क्यों घबराते हैं, आपको मुझसे अच्छी-अच्छी पचासों मिल जायँगी।"

अब्दुलअज़ीज़ –"नहीं-नहीं, हरगिज़ नहीं। यह बख़ूबी याद रक्खो कि तुम्हारी-ऐसी मुझे एक भी न मिलेगी।"

स्त्री—"हाँ, ठीक है। यह सब मुँहदेखे की बातें हैं। आपके इस बतोले में मैं हरगिज़ न आऊँगी।

अब्दुलअज़ीज़—"यह आफ़त कहाँ से आई। आख़िर तो औरत ही है न। बेवक़ूफ़ी सवार हो गई। (प्रकट) मैं सच कहता हूँ, तुम्हारे विना मेरी जिंदगी नहीं।"

स्त्री—"हाँ, ठीक है। मैं सब जानती हूँ।"

अब्दुलअज़ीज़—"हम क्या करें, कुछ अक़्ल काम नहीं करती। अच्छा, फ़र्ज़ करो, हम तुमको नहीं चाहते, मगर जब अदालत में मुझसे पूछा जायगा कि तुमसे कुछ लड़ाई हुई थी, तो मैं झूठ तो हरगिज़ न बोलूँगा, सब हाल कह दूँगा। शायद हाकिम ने मुझे कुछ सज़ा दी, तो मैं उससे बेहतर मरना ही समझता हूँ। इसके पेश्तर कि यह मुआमिला अदालत में जाय, मैं इस दुनिया से चल दूँगा।"

स्त्री—"हाँ साहब, अब क्या। अब आपने ख़ुद क़ुबूल किया कि मैं तुम्हें नहीं चाहता। फिर मैं इससे अच्छा मरना ही समझती हूँ, चाहे आप मर जायँ, फाँसी पड़ें, मुझे इससे क्या। मैं न रहूँगी, न यह सब देखूँगी।"

अब्दुलअज़ीज़ बहुत ही घबराया, और उसका मुँह रुआसा हो गया। उसके चेहरे से उदासी टपकी पड़ती थी। तब अब्दुलअज़ीज़ की स्त्री ने कहा—"वाह साहब, वाह!

आप तो मर्द हैं न, आप क्यों घबरा गए, आप अक़्लमंद हैं, बेफ़ायदा रंज क्यों करते हैं ?"

इतना कह वह बड़े जोर से हँसी। तब तो अब्दुलअज़ीज़ ने समझा कि यह हँसी करती थी। आप भी हँसने लगा और कहा—"वाह ! वाह ! तुमने तो ख़ूब ही दाँव चुका लिया। अच्छा, अब तो सोओ, तीन पहर रात गुज़र गई।"

वह भी हँसने लगी। दोनों थक गए थे, सो रहे।

पंचदश परिच्छेद

[षड्यंत्र]

नियत समय पर सब लोग (जो अब्दुलअज़ीज के मारने में साथी थे) हाजी अताउल्लाह के घर पर इकट्ठे हुए। सबने अपनी-अपनी करतूत वर्णन करनी प्रारंभ की। सबके पहले करीमबख़्श बोला—"देखिए जनाब, आज पंद्रह रोज़ के क़रीब हुआ, मैंने उस काफ़िर के पास ख़त भिजवाया, और वह पहुँच भी गया, लेकिन उस कमबख़्त ने कुछ भी ख़याल न किया, बल्कि उस ख़त को 'गोहितैषिणी सभा' में पेश भी किया था, और मुसलमानों की बड़ी ही शिकायत की थी। अब आप लोग इसकी क़रार वाक़ई सजा करें।"

थानेदार—"ख़त लेकर तो वह मेरे पास भी इत्तिला लिखाने आया था। मैंने उसे बहुत समझाया, मगर उसने

न माना, और कहा—'आपको इससे क्या मतलब, आप क़ायदे की पाबंदी कीजिए।' उसे जरूर-जरूर सजा देनी चाहिए।"

अताउल्लाह—"इसमें तो शक नहीं, लेकिन सबके पहले ऐसी बंदिश करनी चाहिए, जिसमें नाकामयाबी न हो। सबके पहले मैं यह जानना चाहता हूँ कि आप लोगों में से जिन साहबों ने जिन-जिन कामों का जिम्मा लिया था, उन लोगों ने कौन-कौन-सा काम तय किया, और कौन-कौन बाक़ी है। तब फिर दूसरी बातों की सलाह पीछे से की जायगी।"

थानेदार—"जनाबेमन, मुझे यह काम सुपुर्द था कि कांस्टेबिलों को इस काम के लिये राज़ी करूँ, सो मैंने इसकी कोशिश की, मगर सिर्फ़ २५ मुसलमान इस काम के लिये राज़ी हुए हैं, बाक़ी सबों ने इनकार किया, बावजूदे कि मैंने बहुत धमकाया, मगर वे नहीं मानते; उन पचीसों को जब कहिए, तब हाज़िर कर दूँ।"

अताउल्लाह—"ख़ैर, इतने ही बहुत हैं, जिस वक़्त जरूरत होगी, बुलवा लेंगे।"

करीमबख़्श—"जनाब, मेरे सुपुर्द ख़त लिखने का काम था, सो मैंने कर दिया, और पाँच आदमियों को इस काम के लिये आमादा भी किया है।"

शफ़ाउल्लाह—"हुज़ूर, मैंने सौ आदमियों के खाने-पीने का

बंदोबस्त कर रक्खा है। सिर्फ़ दो घंटे पेश्तर मालूम होने से सब दुरुस्त हो जायगा।"

शम्शुद्दीन—"मैंने पचास पिस्तौलें मय सामान के इकट्ठी की हैं, यानी दो सौ गोली मारने का सामान दुरुस्त है।"

कमरुद्दीन—"मैंने एक सौ तलवारें इकट्ठी की हैं।

अताउल्लाह—"सामान तो सब दुरुस्त है, मगर उसके नौकरों को भी मिलाना चाहिए।"

शफ़ाउल्लाह—"यह काम शमशादहुसैन, बरकतुल्लाह, इमाम-बख़्श, नसीमुद्दीन और नयाज़ुद्दौला को सुपुर्द किया गया था, उनसे दर्याफ़्त करना चाहिए। इसमें तीन साहब तो मौजूद हैं, दो नहीं।"

शमशादहुसैन—"जी, मैंने तो एक दाई को मिलाया है, जिसने वादा किया है कि मैं उस वक़्त वहाँ हाज़िर रहूँगी। जो-जो काम कहिएगा, करूँगी। वह दाई उसकी बड़ी ही मुँहलगी है।"

बरकतुल्लाह—"जी, मैंने एक ख़िद्मतगार को राज़ी किया है। वह तो बड़े-बड़े काम करने को कहता है। वह कहता है, 'मैं हर तरह से इसमें कोशिश करूँगा। उस वक़्त ख़ूब शराब पिलाऊँगा। बल्कि बनेगा, तो पानी में ज़हर मिला दूँगा, और उनका शरीक होकर आपसे लड़ने का बहाना करूँगा, और उल्टे उसी को मारूँगा। ग़रज़ कि जहाँ तक हो सकेगा, उसके मारने की कोशिश करूँगा।' देखिए, मैंने ऐसे आदमी

को साधा है कि इन्शाअल्लाह हम लोगों को तकलीफ़ करने का वक्त ही न आवेगा।"

सब लोग इसकी बात सुनकर बहुत ही ख़ुश हुए, और शाबाश-शाबाश कह उठे। तीसरे ने पुकारकर कहा—"ज़रा मेरी बात भी तो सुनिए। तब यक़ीन है कि आप लोग और सब बातों को भूल जायँगे।"

लोगों को उसकी बातें सुनकर बड़ा शौक़ बढ़ा। सब एक साथ ही बोले उठे—"ख़ुदा के वास्ते जल्द कह डालिए।"

इमामबख़्श—"जनाब, मैंने उसके बावर्ची को मिलाया है। वह कहता है, 'खाने में ज़हर मिला देंगे। और अगर आप लोग सामान देंगे, तो जितने आदमियों के खाने का बंदोबस्त कहेंगे, मैं कर दूँगा। आप के चंद आदमियों को अपने पास छिपा रक्खूँगा, और उसे अकेले वहाँ बुलाऊँगा। आप लोग अपना काम कर लेंगे।'"

वह अपनी बात पूरी भी न करने पाया था कि नसीमुद्दीन और नयाज़ुद्दौला वहाँ घबराए हुए आए। लोग घबरा उठे कि माजरा क्या है। अताउल्लाह ने पूछा—"कहो जी, ख़ैरियत तो है?"

उन दोनो ने बड़ी तेज़ी से कहा—"जनाब, हम लोग सब काम तय कर आए।"

लोग बड़े ही प्रसन्न हुए, और उछल पड़े। अताउल्लाह ने कहा—"भई, तुम्हें ख़ुदा की क़सम, जल्द कह डालो, क्या

किया ? क्या अब्दुलवा को मार आए ? जल्द कहो।"

नसीमुद्दीन ने हँसकर कहा—"जी नहीं। जरा सुस्ताने दीजिए, तब कहेंगे।"

अताउल्लाह ने गिड़गिड़ाकर कहा—"नहीं भई, खुदा के वास्ते जल्द कह डालो, जी घबरा रहा है।"

सबने एक साथ कहा—"हाँ-हाँ, फ़ौरन् कह डालिए।"

नसीमुद्दीन ने कहा—"उनके दरबान को हम लोगों ने बड़ी मुश्किल से साधा है। पहले तो वह कमबख्त राजी ही नहीं होता था। पाँच-छ रोज तक बराबर उसे समझाया, तब बड़ी ही मुश्किल से राजी हुआ। मैंने दोसौ रुपए का इक़रार उससे किया है। वह कहता है, 'आप अपने सब हथियार मेरे पास रख दीजिए। जब चाहिए आइएगा, मैं फ़ौरन् फाटक खोल दूँगा, चले आइएगा। फिर बंद कर दूँगा, और आपकी मदद करूँगा। उस वक्त. सब हथियार दे दूँगा। बोझा उठाने की तकलीफ से बच जाइएगा।' अब तो सब अमर तय हो गए। उससे हम लोगों को बड़ी ही मदद मिलेगी।"

अताउल्लाह ने कहा—"हाँ, बहुत ठीक है। अजी शफ़ाउल्लाह! सब हथियार नसीमुद्दीन के हाथ वहाँ भेज दो, और खाने का सब सामान इमामबख्श के साथ बावर्ची के पास भेज दो, ताकि उस वक़्त वहीं सब सामान दुरुस्त रहे, किसी बात का तरद्दुद न हो। आप सब लोग आज अपने साथियों के साथ ११ बजे रात को आरास्ता होकर आइएगा।

इस वक़्त आराम कीजिए, उस वक़्त तशरीफ़ लाइएगा।"

सब लोग अताउल्लाह को सलाम करके अपने घर गए। अताउल्लाह भी उठकर चला गया। शफ़ाउल्लाह उन सब वस्तुओं के भेजने का प्रबंध करने लगा।

षोड़श परिच्छेद

[शूरता]

अब्दुलअज़ीज़ को यह सब हाल उसके पहरेदार, बावर्ची, ख़िदमतगार और दाई से मालूम हो गया था कि आज आधी रात को वे लोग आवेंगे। उसने यह सब हाल अपने मित्र मदनमोहन से कह दिया था। मदनमोहन भी उस समय मरने के लिये वहाँ आ पहुँचा था। अब्दुलअज़ीज़ ने अपने पहरेदार को आज्ञा दे दी थी कि तुम हथियार कदापि मत देना। जब हम कहें, तब देना। मदनमोहन की स्त्री भी अब्दुलअज़ीज़ की स्त्री के पास आ गई थी। ये दोनो स्त्रियाँ अपने-अपने पति को निषेध करने के बदले और भी उत्तेजित करती थीं, और बड़े उत्साह से अपने-अपने पति के साथ मरने को तैयार थीं। लड़ाई का सब सामान दुरुस्त था। मदनमोहन ने कहा—"मित्र! आज हम लोगों की इस संसार में अंतिम रात्रि है। आओ, मिल तो लें, फिर जब वे दुष्ट आ जायँगे, तब तो बोलने का अवकाश भी न मिलेगा।"

ये दोनो इसी तरह आनंदमय वार्तालाप कर रहे थे कि खिदमतगार ने आकर कहा—"वे लोग आ गए। उनके साथ पचीस-तीस आदमी हैं।"

अब्दुलअजीज ने उत्तर दिया—"लिवा लाओ।"

वे सब वहाँ आकर बैठे और बोले—"अब तो तू उस काग़ज़ को फाड़ डाल और इस हरकते नाशाइस्ता से बाज़ आ।"

अब्दुलअजीज और मदनमोहन ने बड़ी बहादुरी से कहा—"हरगिज नहीं, जो तुम लोगों के किए हो सके, सो कर लो।"

उन दुष्टों ने पहरेदार से कहा—"हम लोगों के हथियार लाओ।"

उसने कहा—"कैसे हथियार? लाओ, दो सौ रुपया दो, तब बातें करो।"

तब तो वे सब बहुत ही घबराए। आँख उठाकर देखा, तो यहाँ बंदूकें भरी-भराई रक्खी थीं, तब तो और भी डरे, और कहने लगे—"यह तो धोखे में पड़ गए। अब क्या करना चाहिए?"

अब्दुलअजीज ने कहा—"कुछ परवा नहीं। हम ऐसी लड़ाई नहीं लड़ते। हम तुम लोगों को हथियार दे देंगे, बशर्ते क़ायदे से लड़ो, यानी एक साथ ही हम लड़ाई न करेंगे, एक के बाद एक लड़ें।"

इस बात को उन लोगों ने स्वीकार किया। अब्दुलअजीज़ ने अपने दरबान को हुक्म दिया—"एक-एक को एक-एक हथियार तब देना, जब वह गिर पड़े, और दूसरा लड़ने को तैयार हो। क्योंकि अगर सबको एक साथ हथियार दे दोगे, तो ये एक साथ हमला कर देंगे।"

दोनो स्त्रियों ने यह हाल सुना, और पति के साथ प्राण देने को उतर आईं। लड़ाई प्रारंभ हुई। पहले तो वे सब एक के पीछे एक लड़े, परंतु जब कई मनुष्य मारे गए, तब तो सब एक साथ उठ खड़े हुए, और ख़िदमतगार को मारकर, शस्त्र छीन लड़ने लगे। मदनमोहन और अब्दुलअज़ीज़ बड़ी बहादुरी से लड़ रहे थे, परंतु चारो ओर से घिर जाने के कारण कुछ बस न चलता था। चारो ओर से तलवार का मेह बरस रहा था। लहू की नदी बह रही थी कि इतने में मदनमोहन चिल्ला उठा—"यह देखो, नायब साहब मारे गए!"

अब्दुलअज़ीज़ ने कहा—"इधर देखो, हाजी साहब भी हज को गए।"

उस समय केवल दस मनुष्य बचे थे। ये दोनो थक गए थे, और बिलकुल घायल हो रहे थे। दोनो स्त्रियाँ अपने-अपने पति की सहायता कर रही थीं। एक मनुष्य ने पीछे से चुपचाप आकर अब्दुलअज़ीज़ की स्त्री के एक तलवार मारी, वह लड़खड़ाकर गिरी। मदनमोहन की स्त्री ने चट पीछे

फिरकर एक तलवार उसके ऐसी मारी कि वह वहीं ठंडा हो गया।

अब्दुलअजीज़ की स्त्री उठने योग्य न थी। मदनमोहन की स्त्री ने बैठकर उसका सिर अपनी गोद में रख लिया, और रोने लगी। उसने धीमे स्वर से कहा—"रोओ मत। यह वक़्त रोने का नहीं। उठो, उन लोगों की मदद करो।"

इसने उत्तर दिया—"तुमको धन्य है! इस अवस्था में भी यह बहादुरी कुछ सहज नहीं है। घबराओ न, ईश्वर चाहेगा, तो कुछ भी न होगा। देखो, सब प्रधान लोग तो मारे गए, अब क्या है? वह देखो, उधर कोलाहल हो रहा है कि खत का लिखनेवाला मारा गया।"

ये दोनो इसी तरह बातें कर रही थीं कि यह शब्द सुनाई दिया—"यह देखो, अब्दुलवा गिरा।" अब्दुलअजीज़ की स्त्री घबरा गई, और बोली—"अब मैं रुखसत होती हूँ।"

मदनमोहन की स्त्री कुछ कहने न पाई थी कि देखा, तो केवल शरीर-ही-शरीर था, जीव चल दिया। रोने लगी। इतने में उधर जो दृष्टि पड़ी, तो देखा कि मदनमोहन बड़े ज़ोर से चिल्लाकर गिरा। यह उसी ओर दौड़ी हुई गई। वहाँ कोई भी न था। मुर्दों से सारी पृथ्वी छिकी थी। कुछ अधमुए पड़े तड़फड़ा रहे थे, कुछ भाग गए थे। लहू से सारा मकान रँग रहा था। बड़ा ही भयानक मालूम होता था। अब्दुल-अज़ीज़ का प्राण निकल गया था। मदनमोहन एक किनारे

पड़ा हुआ ईश्वर का ध्यान कर रहा था। यह लिपटकर रोने लगी। मदनमोहन ने कहा—"हैं-हैं, क्या पागल हो गई हो। उठो।"

वह इतना सुनकर उठी, और मदनमोहन का मस्तक अपनी गोद में रख लिया। मदनमोहन ने कहा—"ओफ़्! सारी देह चूर-चूर हो गई है, अब जीने की आशा नहीं। अब्दुलअज़ीज़ के मरने से मेरा चित्त बड़ा ही दुखी है। अब मेरा जीवन असंभव है। मैं इस संसार में घड़ी-दो घड़ी का अतिथि हूँ। देखो, जब तक मैं जीता हूँ, रो-रोकर मेरे चित्त को और भी दुखी न करो। मेरे मरने पर जो चाहना, सो करना।"

मदनमोहन बहुत धीरे-धीरे और रुक-रुककर बोलता था। उसकी स्त्री ने कहा—"हा प्राणप्यारे! क्या आप मुझे अकेली छोड़कर चले जायँगे। ऐसा कभी न होगा।"

मदनमोहन ने कहा—"मेरी प्यारी! कुछ चिंता न करो। तुम्हें कुछ भी कष्ट न होने पावेगा। तुम्हारा पुत्र तुम्हें बहुत अच्छी तरह रक्खेगा।"

उसने कहा—"हाय-हाय! यह आप क्या कहते हैं, ऐसा कभी न होगा। धिक्कार है मेरे उस सुख को, जो मैं आपके विना भोगूँ। धिक्कार है मेरे जीने को, जो मैं आपके विना जीती रहूँ। स्त्री का परम सुख या ईश्वर पति ही है। फिर मैं अपने प्राणप्यारे पति विना कैसे जीऊँगी, क्योंकि जब प्राण ही नहीं, तब शरीर कैसे रह सकता है। अच्छा, अब

आप ईश्वर का ध्यान कीजिए। यह अंतिम समय है।"

मदनमोहन यह सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ, और आँखें बंद करके चुपचाप ईश्वर का ध्यान करने लगा। उसकी स्त्री अपने पति का मुँह एकटक देख रही थी। कभी-कभी तो प्रसन्न होती और कभी चुपचाप रोने लगती। इसी तरह घंटों तक सन्नाटा छाया रहा। पौ फट गई थी। चिड़ियाँ बोलने लगीं। मदनमोहन की स्त्री प्रेम के मारे पागल-सी हो गई थी। उसे यह सुध न थी कि मैं क्या करती हूँ। एकाएकी जो सुध आई, तो देखा कि मदनमोहन का मृत शरीर पड़ा है। पाठकगण उसकी उस समय की अवस्था का ध्यान कर लेंगे, लेखनी की सामर्थ्य नहीं कि वह वर्णन करे। उदासी सारे घर में छा रही थी। कई अधमुए चिल्ला रहे थे। वह रोती और कहती—"हा! आज मुझे सारा संसार सूना मालूम पड़ता है। आज की रात वह रात है, जो हिंदुओं को कभी न भूलेगी। इस भारतवर्ष के दो बड़े भारी रत्न नष्ट हो गए। हा प्राणप्यारे! हमें अकेली छोड़कर कहाँ गए। हाय! ऐसी निर्दयता तो आपने कभी नहीं की थी। आज है क्या?"

इतना कहकर चौंक उठी, और कहने लगी—"यह है क्या? मुझे हो क्या गया है? यह समय बड़ी कठिनाई से हाथ लगा है, इसे न जाने देना चाहिए। अब मैं क्या करूँ, क्या सती होऊँ?"

सोचकर कहने लगी—"नहीं-नहीं, सती न होने पाऊँगी। प्रथम तो सरकार से मनाही, दूसरे घरवाले न मानेंगे, इससे सती होने में बड़ा पचड़ा होगा। तब फिर क्या करूँ?"

कुछ सोचकर फिर कहा—"तलवार मारकर मरना ही ठीक है। अब सोचने का समय नहीं। सबेरा हो गया है, लोग आ जायँगे, तब फिर कार्य में विघ्न पड़ेगा।" तलवार उठाकर कहा—"हे ईश्वर! तुझसे मेरी यही प्रार्थना है कि जिसके लिये मेरे पति ने प्राण दिया, वह कार्य सफल हो, और समस्त भारतवासियों को बुद्धि दे, और उत्साह प्रदान कर कि वे लोग मेरे पति के नाम को न भूल जायँ। हे प्राणप्यारे! आपसे मेरा यही निवेदन है कि आप मुझे स्वीकार करें।"

इतना कहकर उसने अपने गले पर तलवार मारी, और गिर पड़ी।

पाठकगण! आप लोग विचार लें कि ऐसे महात्माओं के मरने का शोक उस समय लोगों को कैसा हुआ होगा।

इसके पीछे तहक़ीक़ात आदि भी हुई, पर अंत में कुछ भी फल न हुआ।

उत्तमोत्तम पढ़ने योग्य उपन्यास

विजय

(दो भाग)

लेखक, श्रीप्रतापनारायण श्रीवास्तव बी० ए०, एल्-एल्० बी० । विदा-उपन्यास लिखकर श्रीवास्तवजी ने जो ख्याति प्राप्त की है, वह अवर्णनीय है । जिसने उसे पढ़ा, वही मुग्ध हो गया । सभी के हृदय से वाह-वाह की आवाज़ निकली । यह नवीन उपन्यास बिलकुल अप-टु-डेट, शिक्षाप्रद, मौलिक और सामाजिक है । कथा-प्रसंग इतना मनोरंजक है कि एक बार पुस्तक हाथ में लेने से फिर विना समाप्त किए जी नहीं मानता, और पढ़कर भी पुनः पढ़ने की लालसा बनी रहती है । मनोभावों की व्यंजना में लेखक कितना सफल हुआ है, यह पुस्तक पढ़ने पर ही ज्ञात होगा । मूल्य प्रत्येक भाग का २), सजिल्द २॥) ; दोनो भाग ४) सजिल्द ५)

जागरण

लेखक, ठाकुर श्रीनाथसिंह । यदि आप उपन्यासों के प्रेमी हैं, तो साहस, सनसनी, दर्द और प्रेम से लबालब भरा यह राष्ट्रीय उपन्यास आज ही मँगाकर पढ़िए । इसमें आपको सुख और ख्याति से ऊबे हुए भारत के एक महापुरुष की कहानी पढ़ने को मिलेगी, जो कष्ट और ग़रीबों के जीवन का अनुभव करके अपनी परम सुंदरी कुमारी पुत्री के साथ जिहालत से भरे एक गाँव में जा बसता है । वहाँ वह कष्ट से किसानों का कैसे उद्धार करता है । रियासत का एक हाकिम उसकी पुत्री का अपहरण

करने के लिये कैसे-कैसे षड्यंत्र रचता और जेल में बंद कराता है। किस प्रकार गाँव में अकाल पड़ता है। उस सुंदरी युवती का एक प्रेमी किस प्रकार वहाँ हवाई कुएँ बनवाकर नदी बहाता, वैज्ञानिक ढंग से खेती करके उस मरु-प्रदेश के एक हिस्से को सरसब्ज़ बना देता तथा उस हाकिम के चंगुल से किस प्रकार अपनी प्रेमिका का उद्धार करता है। इतना ही नहीं, फिर किस प्रकार रियासत का राजा उस युवती पर मुग्ध होता और उसे प्रेम से जीतने का प्रयत्न करता है। कथा इतनी रोचक है कि आप बिना पुस्तक समाप्त किए चैन न लेंगे। पर इस उपन्यास का महत्त्व कथा की रोचकता में ही नहीं, उन आश्चर्य-जनक घटनाओं, अद्भुत तर्कों और गंभीर विचारों में है, जो ठाकुर श्रीनाथसिंह ने उपस्थित किए हैं। इस उपन्यास को पढ़कर आप यह जान सकेंगे कि किसानों की समस्या क्या है, हमारा देश ग़रीब क्यों है, और हम कैसे धनी और सुखी हो सकते हैं। एक शब्द में इस उपन्यास को इस युग की बाइबिल समझिए। मूल्य २), सजिल्द २॥)

विराटा की पद्मिनी

इस ऐतिहासिक उपन्यास के रचयिता हैं गढ़-कुंडार, कुंडली-चक्र और प्रेम की भेंट आदि उपन्यासों के यशस्वी लेखक श्रीवृंदावनलाल वर्मा बी० ए०, एल्-एल्० बी०। विराटा की 'पद्मिनी' का जन्म दाँगी-कुल में हुआ था। वह महासुंदरी थी। लोग उसे देवी का अवतार समझते थे। दलीपनगर के कामुक राजा का दासी-पुत्र कुंजरसिंह उसे चाहता था। वह भी उस पर कृपा करती थी। किंतु मंत्री जनार्दन शर्मा के षड्यंत्र से दलीपनगर का राज्य राजा के एक सगोत्री देवीसिंह को मिला। इससे रानियों ने विद्रोह किया। देवीसिंह रानियों का दमन करना चाहता था। पर कालपी का

नवाब रानियों की सहायता करके बिराटा की पद्मिनी को अपने वश में करना चाहता था। घटना-चक्र से सबकी अंधाधुंध लड़ाई हुई। इस युद्ध में बिराटा के मुट्ठी-भर दाँगियों ने नवाब और देवीसिंह की बड़ी-बड़ी सेनाओं का बड़ी वीरता से सामना करते हुए साका किया, और 'पद्मिनी' जल-राशि में तिरोहित हो गई! पुस्तक आदि से अंत तक स्वाभाविक चरित्र-चित्रण, लेखन-कला के चमत्कार और हृदयस्पर्शी घटनाओं से पूर्ण है। एक बार पढ़ने पर चिर काल तक हृदय पर उसकी छाप बनी रहती है। पुस्तक में बिराटा के दुर्ग के भग्नावशेष का चित्र भी है। मूल्य सादी २॥), सजिल्द ३)

सुघर गँवारिन

लेखक, हिंदी के प्रसिद्ध लेखक ताजिरुल-मुल्क लाला रामजीदास वैश्य (ग्वालियर)। आपने सैकड़ों अच्छे-अच्छे उपन्यास और कहानियाँ पढ़ी होंगी, पर इस पुस्तक को पढ़कर आप कल्पना-सौंदर्य की रोचकता से प्रसन्न हो जायँगे, और इसके जासूसी वर्णन आपको चकित कर देंगे। इसमें चित्रित आजकल का सामाजिक जीवन आपकी आँखों के सामने एक अबला का जीता-जागता चित्र खींचकर रख देगा। मनोरंजकता के साथ सदाचार की शिक्षाएँ भी मिलेंगी। इसमें भेड़ के रूप में भेड़ियों के चरित्रों का चित्रण बड़ी सुंदरता से दिखाई पड़ेगा।

डॉक्टरों की लीला, ज़मींदारों और उनके कारिंदों की करतूत, दीन-दुखियों का सरल हृदय, गाँववालों का मेल-जोल, ये सब बातें इस पुस्तक में हैं।

आप इसे सामाजिक उपन्यास कह सकते हैं। आप इसे जासूसी उपन्यास भी कह सकते हैं। आप इसे कल्पना-साम्राज्य से संबंध रखनेवाला अनूठा उपन्यास भी कह सकते हैं, और सबसे अंत में

आप इसे हिंदू-संस्कृति के अनुकूल आदर्श स्त्री का चरित्र सामने रखनेवाला, स्त्रियोपयोगी, शिक्षा-प्रद उपन्यास भी कह सकते हैं।

आप पढ़कर ही कह सकेंगे कि कैसी उपयोगी एवं अनूठी पुस्तक है।

हिंदी के सब बड़े-बड़े पत्रों ने इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है। मूल्य १॥), सजिल्द २)

मदारी

लेखक, श्रीगोविंदवल्लभ पंत। पंतजी के वरमाला और राज-मुकुट, दोनो नाटक हिंदी-संसार में बहुत पसंद किए गए। प्रतिमा (उपन्यास) और संध्या-प्रदीप (कहानी-संग्रह) का भी आदर हुआ। अब यह मदारी आपके सामने है। अब इसका भी खेल देखिए। इसमें पहाड़ियों के जीवन की छटा और पर्वतराज हिमालय के प्राकृतिक सौंदर्य का पूरा आभास मिलेगा। इस उपन्यास का नायक एक पहाड़ी किसान का बेटा 'नवाब' और नायिका लोहार-किसान-कन्या कुमारी तितली। किंतु तितली के साथ विवाह करने के लिये नवाब को आठ सौ रुपए चाहिए। नवाब धन की प्राप्ति के लिये मदारी बनता है, फिर दवाफ़रोश होकर 'ताहज़ो'-नामक चाकूवाली के चक्कर में फँसकर हवालात की हवा खाता है। घटना-क्रम से ताहज़ो नवाब के पेट में छुरा भोंककर ग़ायब हो जाती है। भाग्य से नवाब बच जाता है, और अंत में अनेक आशा और निराशाओं के बाद वह वह अपने जीवन के स्वप्न को सच्चा करता है। उपन्यास बड़ा ही घटना-पूर्ण है। भाषा चटपटी, प्रहसन का रंग लिए हुए है। बीच-बीच में गीत भी सुनने को मिलेंगे। आठ रेखा-चित्रों से पुस्तक सजाई गई है। मूल्य १॥।), सजिल्द २।)